रचयिता-परिचय [illegible]

जन्मतिथि : [illegible]

पिता का नाम

स्व०, पं० [illegible]

ग्राम-डाक : [illegible]

(तब शाहाबाद), बिहार [illegible]

१. व्यवसाय : पत्रकारिता (प्रधान सम्पादक, दैनिक [illegible] 'विश्वमित्र', मासिक 'पाटल' तथा 'बालक', साप्ताहिक [illegible] बिहार'. 'बिहार-जीवन') ।

२. उच्चतम सम्मानोपाधि : 'साहित्यवाचस्पति', (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग) ।

३. उच्चतम गैरसरकारी पद : अध्यक्ष, बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन एवं बंग प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन; वरिष्ठ [illegible] सम्मेलन, प्रयाग ।

४. उच्चतम सरकारी पद : द्वितीय तथा अन्तिम अध्यक्ष, हिन्दी-समिति, बिहार सरकार/प्रथम अध्यक्ष थे डॉ० लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' ।

५. प्रकाशित काव्यकृतियाँ : १. 'गणदेवता' [illegible] एवं देशभक्तिपूर्ण रचनाओं का संकलन, २. 'अशोक' (प्रबन्ध-काव्य), ३. [illegible]

६. प्रकाश्य काव्यकृतियाँ : १. राष्ट्र-नमन, २. [illegible] ४. हिमाद्रि, ५ प्रकृति-छन्द, ६. क्रान्ति-प्रेरणा, इत्यादि (सभी [illegible]) ।

७. स्वाधीनता-संग्राम में—१९३० एवं १९४२ ई०, [illegible] पेन्शन-परित्याग ।

८. सरकारी सम्मानराशि का दान : सम्मानराशि—[illegible]

९. दान विवरण : बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को [illegible] पीड़ित सहायता-कोष में ४३०० रु०, राजा [illegible] समारोह-कोष में २००० रु०, हिन्दीसेवा एवं [illegible] अन्य कोषों में—५५१ रु० (कुल योग १६८५१ रु०)

प्राप्तिस्थान एवं आवास : [illegible]

'देवगीत', [illegible] (बिहार)

शक्तिमयी

रामदयाल पाण्डेय

शक्तिमयी



रामदयाल पाण्डेय

'शक्तिमयी'

(नारीजीवन-सम्बन्धी बहुआयामी पद्य रचनाएँ)

: रचयिता :

रामदयाल पाण्डेय

: प्रकाशक :

पाण्डेय रचनावली प्रकाशन

'देवगीत', आशियाना नगर,

पटना—८०००१४

: प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान :
पाण्डेय रचनावली प्रकाशन
'देवगीत', आशियाना नगर,
पटना—८०००१४

प्रथम संस्करण

प्रकाशन-वर्ष : १९९० ई०

मूल्य : पचहत्तर रुपये

: मुद्रक :
न्यू साहनी प्रिंटिंग प्रेस,
४/५६ राजेन्द्र नगर,
पटना—८०००१६

स्मृति-तर्पण

पूजनीया माँ स्व० श्रीमती रामराजी देवी, पूजनीया धर्ममाता स्व० श्रीमती अन्नपूर्णा त्रिपाठी, बालविवाहिता स्व० श्रीमती रोशनी पाण्डेय, युवापरिणीता स्व० श्रीमती चन्द्रावती पाण्डेय, धर्मभगिनी स्व० श्रीमती सत्यवती गौड़, धर्मानुजवधू स्व० श्रीमती अन्नपूर्णा झुनझुनवाला, स्व० धर्मपुत्रवधूवत् श्रीमती चन्द्रा सेठ, कनिष्ठ आत्मजा स्व० श्रीमती आशा रानी द्विवेदी आदि को यथायोग्य भक्ति, श्रद्धा, समादर एवं वात्सल्य का समर्पण।

—रामदयाल पाण्डेय

स्नेह-समर्पण

धर्मानुजा श्रीमती मल्लिका अहलुवालिया, धर्मानुजा श्रीमती लीलावती नारायण, पुत्रवधू श्रीमती लक्ष्मी पाण्डेय, धर्मपुत्रवधूवत् श्रीमती सुभाषिणी भीमसेन, आत्मजा श्रीमती गीतारानी पाठक, आत्मजावत् श्रीमती उषा पाठक, तथैव श्रीमती पूनम पाठक को

अशेष स्नेहाशीषपूर्वक भेंट।

—रामदयाल पाण्डेय

आत्मनिवेदन

यह कोई भूमिका नहीं है। सामान्य आत्मनिवेदन ही है यह। मेरी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती चन्द्रावती पाण्डेय आदर्श धर्मपत्नी एवं नारी थीं। वे न जाने कितने पुरुषों और कितनी महिलाओं की धर्ममाता थीं। ६ माच, १९६८ को ही वे दिवांगता हो गईं। उनके श्रद्धालुओं ने उनकी पुण्यस्मृति में चन्द्रावती पाण्डेय गोष्ठी सस्थापित की और उसके लिए स्थायी निधि जमा कर दी। इस गोष्ठी का संचालन बिहार-महिला-हिन्दी-साहित्य-संगम के तत्त्वावधान में संगम की विदुषी एव प्रतिभा-शालिनी महासचिव प्रो० डा० श्रीमती उषा रानी सिंह करती हैं और उक्त निधि की भी संचालिका वे ही हैं।

स्व० श्रीमती चन्द्रावती पाण्डेय की प्रबल आकांक्षा थी कि मैं सरकार के समक्ष झुकूँ नहीं और भारतीय नारी-समाज के सम्बन्ध में भी कविताएँ लिखूँ। उनके जीवनकाल में तो यह लेखन सम्भव न हो सका, परन्तु इधर मैं स्वय को सरकारी पद से बरबस मुक्त कराकर क्रमशः ऐसी रचनाएँ करता गया। धर्मानुजा श्रीमती लीलावती नारायण ने कतिपय रचनाएँ देखीं तो यह प्रस्ताव किया कि इन रचनाओं का प्रकाशन हो, क्योंकि नारी-जीवन के सन्दर्भ में बहुआयामी रचनाओं का अभाव है। यों उन्हें इन रचनाओं का स्तर भी पसन्द आया। मुझे कोई निर्वाह-भत्ता तो मिलता नहीं और मैंने स्वतंत्रता-संग्राम में अपने योगदान के लिए भी निर्वाहभत्ता नहीं लिया, क्योंकि मेरी आत्मा इसका मूल्य लेने के लिए प्रस्तुत नहीं हुई। वस्तुतः मातृभक्ति का मूल्य लेना तो पुत्र का कर्त्तव्य नहीं ही होना चाहिए। मैंने भारत-माता को भी माता मानकर ही ऐसा निर्णय लिया।

मैंने सीमित संख्या में ही इस संकलन के लिए रचनाओं का चयन किया। इसके पश्चात् अपनी अन्य रचनाओं के भी वर्गीकृत संकलन प्रकाशित करने का प्रयास मैं करूँगा और इस उद्देश्य से ही पाण्डेय-रचनावली-प्रकाशन सस्थापित किया गया है। रचनावली के इस प्रथम पुष्प के

विक्रय से जो बचत होगी उससे भावी रचनावलियों के प्रकाशन को बल मिलेगा। यों लागत के अनुपात में मूल्य-निर्धारण की दर से इसका मूल्य अल्पतर ही निर्धारित किया गया है।

मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूँ कि इन रचनाओं की उत्प्रेरिका स्व० श्रेष्ठांगिनी श्रीमती चन्द्रावती पाण्डेय की पावन तथा उदात्त आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करूँ और इनके प्रकाशन हेतु सर्वथा निःस्वार्थ भाव से सतत प्रयासरत धर्मानुजा श्रीमती लीलावती नारायण के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करूँ, जो स्वयं समर्पिता एवं प्रतिभामयी काव्यसाधिका हैं।

इन दोनों ही देवियों में मुझे श्रीमद्भगवद्गीता में उल्लिखित नारी-सद्गुणों का साक्षात्कार हुआ—

'कीर्त्तिः, श्री, वाक् च नारीणाम्, स्मृतिर्मेधा. धृतिः क्षमा।'

यों भी पारिवारिक जीवन में उभय (नर एवं नारी) वर्गों के पारस्परिक स्नेह, सहयोग, समर्पण, सौमनस्य, सामंजस्य, सेवामयता, सहिष्णुता और समन्वय की नितान्त आवश्यकता है। इन्हीं की आधार-भूमि पर स्वस्थ एवं सुखमय पारिवारिक जीवन का निर्माण सम्भव है। मैं तो इन्हें ही अष्ट सिद्धियाँ मानता रहा हूँ। उभय वर्गों का सन्तुलित एवं संयत विकास ही समाज-विकास है और जीवन-प्रासाद का सम्यक् निर्माण नियमित परिश्रम से ही होता है। सामाजिक जीवन की स्वस्थ संरचना हेतु उभय वर्गों (नर-नारी) का स्वार्थान्धता, रूढ़िवादिता एवं संकीर्णताओं से मुक्त होना सर्वथा आवश्यक है। नर और नारी दो हाथों के समान हैं जिनका सहयोग सतत औदात्त्य के आधार पर होना चाहिए।

मैं मुद्रण-व्यवस्था के लिए श्री रामबालक प्रसाद एवं उनके सहयोगियों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

'देवगीत', अशियाना नगर,
पटना-८०००१४
दिनांक २ जून, १९९०

—रामदयाल पाण्डेय
गंगा दशहरा, २०४७ वि०

'शक्तिमयी'

रचना-अनुक्रम अन्तिम दो पृष्ठों पर देखें।

—रामदयाल पाण्डेय

सर्वशक्तिमयी

शक्तिमयी चिर, सर्वशक्तिमयि !
उचित यही संज्ञा-सम्बोधन;
तुम्हें समर्पित करता हूँ मैं
सादर स्नेह-नमन-अभिनन्दन।

शक्ति अनल भी पाता तुमसे,
तुम ऐसी प्रचण्ड ज्वाला हो;
यों तो तुम सर्वदा सुगन्धित-
कोमल सुमनों की माला हो।

अग्नि के लिए अग्नि प्रबलतम,
हिम के लिए सदा शीतलतम;
प्रजनन, पोषण, मूलोच्छेदन,
कर्त्तव्यों का चिर चलता क्रम।

सज्जन-संरक्षिका सदा तुम,
चिर दुर्जन-संहारकारिणी;
देवि! अनय-नरपशुता पर हो
चिर विकराला महिषमर्दिनी।

तुम सरस्वती-लक्ष्मी-दुर्गा-
समन्विता, सर्वस्वदायिनी;
सत्यम् - शिवसुन्दरम् - समन्वय-
सदा कारिणी, तापनाशिनी।

ओजस्विनी, महातेजोमयि!
तुम मनस्विनी, चिर तपस्विनी;
नहीं कहीं तुम शक्तिवंचिता;
हो चिर परिजन-दुःखहारिणी।

कहाँ कभी विश्राम तुम्हें है?
करती रहतीं कर्मायोजन;
कभी अन्नपूर्णा बनती हो,
देतीं शिक्षण और प्रशिक्षण।

कहाँ अर्हता की सीमा है?
सर्वसुयोग्या, शक्तिवर्द्धिनी;
कर सकतीं तुम गिरि-आरोहण,
बन सकतीं तुम शिखरगामिनी।

वनकन्या, पर्वतकन्या हो,
बन सकतीं तुम सिंहवाहिनी;
मरु में भी कर धार प्रवाहित,
बनतीं उर्वरता - प्रदायिनी।

बनकर अभियंत्रण-विशारदा
कर सकतीं तुम सब कुछ निर्मित;
किसी क्षेत्र में, किसी दिशा में
नहीं तुम्हारी क्षमता सीमित।

शिशु की शिक्षा और चिकित्सा
में रखतीं तुम अद्वितीयता;
नारी-स्वास्थ्य-सुरक्षा में है
करता कौन तुम्हारी समता ?

सेना में प्रेरणादायिनी,
युद्धभूमि में लक्ष्मीबाई ;
शिशुओं को तुम वीर बनातीं;
वृद्धों में भरतीं तरुणाई ।

कृषि - उद्योग - सुसंचालन की
भी है अद्भुत शक्ति तुम्हारी;
ऊर्जा तो ऊर्जा है, चाहे
विद्युत् हो अथवा चिनगारी ।

संचेतना-सुचिंतन में तुम
दिव्या, चिर चिन्मयी शक्ति हो;
लोभ-लाभ में, छल-प्रवंचना-
में निर्लिप्ता, अनासक्ति हो ।

ज्योतिर्मयि हे ! प्रज्ञामयि हे !
मेधामयि हे ! प्रतिभामयि हे !
बढ़ो निरन्तर क्रान्तिशक्ति ले,
ऋद्धि-सिद्धिमयि ! क्षमतामयि हे !

भला तुम्हारी क्षमताओं का
हो सकता है क्या परिसीमन ?
कोई शक्ति नहीं कर सकती
देवि ! तुम्हारा शक्तिविभाजन ।

तुम शालीना, सकलप्रवीणा,
चिर गरिमा-इतिहासमयी हो;
ग्रीष्म-शिशिर हो अथवा पावस,
तुम शाश्वत मधुमासमयी हो,

चिर सुकर्मपथ पर सुगामिनी,
सहयोगिनी सुपरिजन-गण की;
द्विधामुक्त हो तुम लाती हो
सुविधा, नई विधा जीवन की ।

हे वाङ्मयि ! अनवरत बढ़ो तुम,
वाङ्मय पर अधिकार तुम्हारा;
निर्झरिणी लेखनी तुम्हारी
चलती ज्यों गंगा की धारा।

कलामयी, विज्ञानमयी तुम,
शस्त्र - शास्त्र - साफल्यमंडिता;
बाह्य - आन्तरिक - शक्तिभूषिता,
मात्र नहीं तुम रूपगर्विता।

मातृशक्ति तो देवशक्ति है;
तुम देवी हो चिर प्रतिष्ठिता;
करे उपेक्षा यदि मानव तो-
कहाँ रहेगी मनुज-अस्मिता ?

तुम माता आजीवन वंद्या,
पत्नी हो अथवा भगिनी हो;
पुत्री भी तो इसी भाँति है;
जननी बनकर पयस्विनी हो।

कभी नहीं स्वत्वों की चिन्ता,
तुम तो चिर कर्त्तव्यमयी हो,
चलती रहतीं नव-नव पथ पर,
सतत कर्मगन्तव्यमयी हो।

गागर में सागर हो जैसे,
भूतल पर आकाशमयी हो;
सदा आत्मविश्वासपूर्ण हो,
कभी नहीं संत्रासमयी हो।

स्वर्गकल्पना - रूप-उर्वशी;
देवि ! तुम्हीं नल की दयमन्ती;
कालिदास की शकुन्तला तुम;
तुम्हीं भरत-जननी बलवन्ती।

महावीर की माँ त्रिशला तुम;
बुद्धदेव की जननी माया;
राहुलमाता यशोधरा तुम;
कालपृष्ठ पर यश चिर छाया।

पुनः पुनः है नमन तुम्हें हे
ज्योतिर्मयि ! आनन्दविधायिनि !
काव्य-नृत्य-संगीतमयी तुम;
नमन तुम्हें हे भव-वरदायिनि !

वैशाली की नगरवधू-तुम;
तुम्हीं भारती हो मण्डन की;
जहाँगीर की नूरजहाँ तुम,
तुम जनयित्री भव-यौवन की ।

पति को अखिल आधियों पर चिर
बनतीं ओषधि रामवाण तुम,
आक्रन्दन-कुण्ठनमय स्वर पर
बनतीं वैदिक सामगान तुम ।

जो कुछ कहता वह कम ही है,
संभव कहाँ उचित मूल्यांकन ?
चिर यथार्थ यह, पूर्ण सत्य है;
माना जाय नहीं यह चिन्तन ।

पुरुष अर्द्धनारीश्वर है तो
नारी पुरुषेश्वरी अधिक है
कर्म - त्याग - सेवा - सहिष्णुता
में न तुम्हें आलस्य तनिक है ।

यह मेरा अनुभूत सत्य है,
इसमें नहीं कल्पना का बल;
चिर धीरा, नित गंभीरा तुम;
कभी नहीं करतीं मन चंचल ।

तुम भारत की रिक्थ-रक्षिका;
आवश्यक नवयुग की दूती;
चिर अभिनव विकास की दात्री;
तुम रहती हो कहाँ निपूती ?

पुत्र-पुत्रियों में क्या अन्तर ?
जो भी हो, पर्याप्त वही है;
चिर घातक वैषम्य-दृष्टि है;
समता का ही मार्ग सही है ।

तुम चाहो तो सब कुछ संभव;
पर तुम तो चाहतीं सन्तुलन;
पति को भी सिखलातीं संयम;
करतीं सदा स्वस्थ आयोजन।

तुम सदैव स्वच्छता-दायिनी;
रहने देतीं नहीं प्रदूषण;
निर्मलता-साधिका सर्वदा,
सम्यक् रखतीं जीवन-यौवन।

सदा जागरणदात्री भी तुम;
क्योंकि तुम्हारा अग्रजागरण;
शयन तुम्हारा सदा अन्त में;
स्वल्पशयन ही करते लोचन।

कृषकों से भी आगे बढ़कर
तुम कर्त्तव्यनिरत रहती हो;
लिये हुए श्रमभार सर्वदा,
व्यथाभार अतिशय सहती हो।

तुम से लें प्रेरणा पुरुष तो
चिर समाज की पूर्ण प्रगति हो;
अधिक जागरण, स्वल्पशयन हो;
कर्त्तव्यों में अविरत रति हो।

शक्तिमयी ही नहीं, सर्वदा
तुम सामाजिक भक्तिमयी हो;
इच्छा-आवश्यकताओं से
बढ़, कर्त्तव्यासक्तिमयी हो।

कर्त्तव्यों में शक्ति निहित है,
इसीलिए तुम शक्तिमयी हो;
तुम प्रणयिनी गौणतः ही हो,
पुरुष भले रहता प्रणयी हो।

तुम अस्मिता प्राण-आत्मा की;
विभा-शक्ति हो चिर समाज की;
स्वयं रूप-गुण अलंकार हैं;
नहीं अपेक्षा साजबाज की।

कविता का है नमन समर्पित,
देवि ! तुम्हीं हो काव्यप्रेरिका;
तुम कवयित्री भावमयी हो,
मनुज-मंच की नृत्य-नाटिका ।

तुम कुसुमादपि मृदुतररूपा;
तुम हो वज्रादपि कठोरतर;
सरलहृदय तुम, तरलहृदय तुम;
सुन्दरता से तुम सुन्दरतर ।

शक्तिमयी को जरा कहाँ है ?
देवि ! सर्वदा तुम हो अजरा;
निज स्वरूप का ध्यान तुम्हें जब—
आता, बनतीं शक्ति-उर्वरा ।

देवि ! शौर्य का नमन तुम्हें है;
नमन तुम्हें सारस्वत कवि का;
कोमलता का नमन तुम्हें है;
नमन तुम्हें बल-पौरुष-छवि का ।

वर्षा-वसन्तमयी

नारी को क्यों कहें अपावन ?
वह तो शाश्वत परम पुनीता;
ज्ञानमयी, कल्याणमयी है,
ज्यों हो श्रीमद्भगवद्गीता ।

मुसलिम हो तो वह जीती है
जैसे हो कुरान की आयत;
यदि ईसाई हो तो देती
सदा बाइबिल-सी है राहत ।

सिख हो तो गुरुग्रन्थ-सदृश वह
हमें सुनाती साँची बानी;
यदि रहती है बौद्ध, सुनाती
सदा 'धम्मपद' बन कल्याणी ।

निवेदिता कि मदर टेरेसा,
सेवा से हरती जन-पीड़ा;
भक्तों-सन्तों में बनती है
त्यागमयी कवयित्री मीरा ।

देती जीवन वसुन्धरा को
सदा भरे दृग में पावस-घन;
उसका अन्तस्तल वसन्तमय;
नयनों में रहता चिर सावन।

सहती है पतझर-निदाघ चिर,
सदा शरत् - हेमन्तमयी वह;
झड़कर, जलकर भी रहती है
नर के लिए वसन्तमयी वह।

बापू की 'बा' वह बनती है,
'श्री अरविन्दो' की 'श्रीमाँ' है;
उसके त्यागों की, करुणा की
कहीं नहीं बनती सीमा है।

वह चौहान सुभद्रा भी है,
सदा 'महादेवी' महीयसी,
परमहंसवत् नर हो तो वह
सदा शारदा है गरीयसी।

जीवन-वन में व्रज-वंशी वह;
अन्तःपुर में 'श्रीराधा' है;
संग चले तो नर-जीवन की
हर लेती सारी बाधा है।

वह गंगोत्री की गंगा है;
देती है वह भीष्म पितामह;
शरशय्या पर भी रक्षाहित
लेती सारी पीड़ाएँ सह।

अग्निपरीक्षा देती है वह,
लिखवाती वन में रामायण;
त्रिविध ताप हरती मानव के
छिन्न-भिन्न कर बाधा-बन्धन।

निखिल वेदना-विष पी-पीकर,
बनती वह आनन्दमयी है;
बाहुशूल हर लेती कवि का,
सदा छन्द--मकरन्दमयी है।

अखिल शूल हर लेनेवाली,
वह सदैव है शूल - हारिणी;
पति-जीवन को नन्दन-वन कर,
ध्येय कि हो वह 'वन'-विहारिणी।

क्या उसकी समता में कोई
पुरुष कभी भी हो सकता है?
इतने सुमन-बीज क्या उसके
जीवन-वन में बो सकता है?

यों तो कहना कठिन कि होती
है जग में प्रत्येक सुनारी;
पर दुर्वह दायित्व-भार ले,
सहती वह विपदाएँ सारी।

सन्नारी वह सदा रहेगी,
उसको सद्व्यवहार चाहिए,
क्या न उसे सम्मान-शान्तिमय
जीवन का आधार चाहिए?

मातामही-पितामही

सेवा और समर्पण का क्रम
चलता है आजीवन;
कितना कष्टसहन-श्रमपीड़ा-
मय नारी का जीवन!

आयु रहे जितनी सुदीर्घ;
विश्राम कहाँ जीवन में?
बँधी सदा रहती सेवा-तप—
के पुनीत बन्धन में।

केवल माता-पद तक ही क्या
उसकी सेवा सीमित?
मातामही कि हो पितामही,
करती जीवन अर्पित।

भरती है वात्सल्य-सुधा से
जन-वन में हरियाली;
स्वयं पीत हो रक्तहीन,
देती परिजन को लाली।

मातामही अधिक प्यारी है,
शब्द जुड़ा है 'माता';
पितामही भी स्वल्प न्यून है;
चिर सेवा का नाता।

वृद्धावस्था में घट जाती
शक्ति मनुज के तन की;
जननीमही कि जनकमही हो;
प्रतिमा सेवा-प्रण की।

रुग्णा होकर भी करती
जाती सेवा का अर्पण;
पौत्र या कि दौहित्र भले ही
करें नहीं स्मृति-तर्पण।

दौहित्री कर्त्तव्य निभाने—
में रहती है आगे;
और नहीं दौहित्र भी कभी
कर्त्तव्यों से भागे।

चार पीढ़ियों तक सेवा का
कितना अद्भुत क्रम है!
पुत्री, भगिनी, पत्नी, माता
और मही का श्रम है।

स्वयं अभावों-कष्टों में रह
सुख-सुविधाएँ देती;
किन्तु नहीं प्रतिदान चाहती;
कभी नहीं कुछ लेती।

नारी विष पीने आई है,
दुःख मिटाने आई;
रहे भले जर्जर तन-जरता,
शैशव या तरुणाई।

अनुगामिनी पीढ़ियाँ तीनों
करें वन्दना सादर:
अर्पित करें अर्चना-पूजा-
भक्तिभाव जीवन भर।

यह अनवरत प्रवाह, सतत
कर्तव्ययोगमय पावन;
कर पाता है सफल इसी से
मानव जीवन का रण।

नारी का क्यों भला अनादर?
भगिनी या बाला का?
ये हैं सर्वोत्तम सुमेरु
नर की जीवन-माला का।

शक्ति-उपेक्षा से समाज—
को कितनी शक्ति मिलेगी?
करें उपेक्षा पुष्प-बीज की
तो क्या कली खिलेगी?

करें प्रतिष्ठा मातृशक्ति की,
सम्यक् हो संरक्षण;
जीवन के सुविकास हेतु
करना है उसे अबन्धन।

मातृपीड़ा

माँ की पीड़ाओं का वर्णन कवि क्या कर सकता है?
अश्रु गिरा सकता है केवल, आहें भर सकता है।

कैसी असह वेदना होती!
कितनी करुण कहानी!
मूक भाव से हँसकर सहती;
सहती कुल मनमानी।

आजीवन वह मृतवत् रहती, कैसा उसका जीवन!
पर प्रसन्न रहती, करती वह प्रजनन, सन्तति-पालन।

सदा अहिल्यावत् रहती वह;
जैसे हो पाषाणी;
माँ बनते ही छिन जाती है
उसकी अपनी वाणी।

क्या स्वतंत्रता उसकी रहती? बन्धन पर है बन्धन;
रंगबिरंगी वसुधा में है उसे कहाँ आकर्षण?

प्रजनन कितना कठिन कर्म है!
प्रसव-वेदना भीषण;
कितने कष्टों से करती
सन्तति का उदर-प्रधारण!

किन्तु महादुःखों में भी कितनी मुसकानमयी है!
दुःखमुक्ति-कामना नहीं, वह चिर कल्याणमयी है!

चिर विकासदायिनी विश्व को,
शाश्वत सुख की जननी;
महाव्यथा में भी न सुनाती
रामकहानी अपनी।

तिमिरग्रस्त रहकर देती है वह प्रकाश वसुधा को;
सतत विश्व-विष पीती, अर्पित करती प्रेम-सुधा को।

अखिल अमंगल अपनाती है;
देती है चिर मंगल;
नहीं जानती वह करना
कोई विरोध-कोलाहल।

अमित स्नेहछायादायी उसका मैला भी आँचल;
तन पर लेकर अखिल मलिनता, मन रखती चिर निर्मल।

ओ माता! चिर त्राणमयी;
तुम शाश्वत प्राणमयी हो;
करती प्राण समर्पित हो तुम,
चिर बलिदानमयी हो।

ओ करुणामयि! अपनाई यह कैसी क्रूर नियति है!
दुरवस्था-दुर्गति अपनाकर, भव को दी शुभ गति है।

नयन तुम्हारे करुणामय हैं,
हस्त सदा वरदानी;
क्षमामयी हो चिर, तुमको
क्या समझे जग अभिमानी?

सदा तुम्हारा होता शोषण, होता सदा प्रदोहन;
भीतर ही भीतर पी जाती हो तुम अपना क्रन्दन।

श्रम के फल खाती वसुन्धरा;
तुम करती केवल श्रम;

दे-देकर प्रतिदान न लेतीं;
अद्भुत यह जीवन-क्रम ।

सर्वंसहा धरित्री हो, निर्मल गंगाधारा हो;
चिर अंगुलिनिर्देश तुम्हारा जैसे ध्रुवतारा हो ।

तुम दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती,
पूर्ण भैरवी, काली,
अम्बा, जगदम्बा, समष्टि की
रक्षा करनेवाली ।

अर्पित है तुमको सभक्ति जो कुछ अर्चन-पूजन है;
सदा तुम्हारे चरणों पर मस्तक नत है, वन्दन है ।

उपेक्षिता

कितनी महिलाओं को मिल पाता समत्व-सम्मान आज भी ?
उपेक्षिता-शोषिता-पीड़िता क्या न आज भी भारत-नारी ?

समारोह - उत्साह - प्रदर्शन
महिला-वर्ष मना पाये हैं;
न्याय-लक्ष्य-सन्निकट आज भी
क्या यथार्थ में बढ़ आये हैं ?

नारी क्या न सहन करने को विवश आज भी विपदा भारी ?

पुत्र और पुत्री में अबतक
बना हुआ भारी विभेद है;
पग-पग पर नारी को पड़ता
सहना कितना क्लेश-खेद है ?

नारी के नयनों के भीतर जलती है कैसी चिनगारी ?

सम्बन्धों के विषम जाल में
बन्दी रहता नारी-जीवन;
नहीं जानती शैशव का सुख;
नहीं जानती, क्या है यौवन ?

नारी की कोमल ग्रीवा पर चलती रहती सदा दुधारी।

पुरुष गर्व-वैभव का इच्छुक;
सदा चाहता अपनी महिमा;
नारी घुट-घुटकर, जल-गलकर
सतत बचाती अपनी गरिमा।

सुख-वैभव जीवन से बढ़कर नारी को सन्तति है प्यारी।

मातृ-नमन

नमन विश्व को, मातृशक्ति को किन्तु सर्वदा प्रथम नमन;
शास्त्रमयी, माँ शस्त्रमयी चिर, शक्तिमयी माँ का वन्दन।

शास्त्र चाहिए, शक्ति चाहिए;
शस्त्र चाहिए मानव को;
दुरुपयोग पर नहीं चाहिए;
मिले वृद्धि चिर गौरव को।

चिर सर्वस्वदायिनी माँ है, जन्म और जीवन-पोषण।

नीर नयन में, क्षीर अंक में,
बल अजेय अन्तस्तल में;
विजय-शान्तिदायिनी सर्वदा
तुमुल-युद्ध-कोलाहल में।

प्राणमयी माँ, ज्ञानमयी माँ, देती है चिर पावन धन।

अखिल अपावनता का क्षय हो,
माँ की चिर कामना यही;
निखिल अमानवता विनष्ट हो,
माता से याचना यही।

पूर्ण समर्पण कर दें उर का, माँ से क्या रखना गोपन ?

मुण्डमाल या पुष्पमाल हो,
माँ तो चिर कल्याणमयी;
भला नहीं क्या माता ही चिर
त्राणमयी बलिदानमयी ?

कलुषकालिमा की विनाशिनी, माँ की दृष्टि सदा पावन ।

अग्निधारिणी, हिमकिरीटिनी;
माँ सदैव वरदानमयी ।
विघ्ननाशिनी, अभयकारणी,
ज्योतिर्मय - अभियान-मयी ।

मुक्तिदायिनी माँ सदैव, करती विनष्ट बाधा-बन्धन ।

मिले पराजय भले हमें, पर
माता की तो चिर जय हो;
माँ की जय में जय सन्तति की,
इसमें तनिक न संशय हो ।

माँ की ज्वाला में निदाघ है, करुणा में मंगल-वर्षण ।

सेवा-जीवन

यों तो सबका ही जीवन चिर सेवामय वांछित है;
पर नारी का तो विशेष आकांक्षित सेवा-जीवन ।

माता, भगिनी, पत्नी बनकर
सेवा ही तो करती;
पुत्री-पुत्रवधू भी बन,
सेवा-मंजूषा भरती ।

नारी के जीवन में वांछित कहाँ लोभ-आकर्षण !

उसका है अपमान, कहें यदि
होती वह अबला है;
सेवामय कर्मों से रहती
वह सदैव सबला है ।

वांछनीय है सदा इसी से नारी का अभिवन्दन ।

उपमानों से वह ऊपर,
उसका उपमान कहाँ है ?
वह मानव की जयदात्री;
उसका जयगान कहाँ है ?

वह उपेक्षिता रहकर भी करती समाज का मण्डन।

स्वार्थ-लोभ से ऊपर उठकर
चिर उसको रहना है;
घात और प्रतिघात अखिल
बनकर सहिष्णु सहना है।

अहि-आलिंगित रहकर भी होती चिर शीतल चन्दन।

उसे ज्ञात है, वसुन्धरा से
नहीं द्रव्य ले जाना;
सेवा-कुन्दन से ही तो
सारा गौरव है पाना।

अतः सदा उसकी महिमा-गरिमा का है अभिनन्दन।

जीवन तो चिर सेवा ही है,
ज्ञात सदा नारी को;
सदा सींचती रहती वह
जीवन की फुलवारी को।

इसीलिए तो व्याप्त विश्व में चिर उसका सम्मोहन।

कर्त्तव्य-बन्धन

माता हो, पत्नी या भगिनी या पुत्री का हो तन;
सबके साथ नहीं रहता क्या कर्त्तव्यों का बन्धन ?

कर्त्तव्यों के साथ चला
करता अधिकारों का रथ;
बिना किये कोलाहल मिलता
जीवन का मंगल-पथ।

अधिकारों को सार्थक करता कर्त्तव्यों का पालन।

माँ देती वात्सल्य-स्नेह,
पत्नी तो पूर्ण समर्पण;
बहन और पुत्री देती है
चिर सेवामय जीवन।

इसी भाँति अवदानों में हैं निहित सदा सुख-साधन।

पुत्र और पति के भी क्या
कर्त्तव्य नहीं कुछ होते ?
मातृभक्ति-पत्नीव्रत से क्या ?
कभी मनुज हैं रोते ?

माँ का है कर्त्तव्य, करे वह सन्तानों का पोषण।

पत्नी सहयोगिनी बने चिर,
दुख वह पति के बाँटे;
करे सदा उन्मूलित पति के
जीवन-पथ के काँटे।

पर पति भी क्या नहीं करे पत्नी का दुःख-निवारण ?

बहन और पुत्री से भी तो
हैं कर्त्तव्य अपेक्षित ?
माता-पिता और अग्रज के
प्रति सुभक्ति हो अर्पित।

इसी भाँति जीवन बनता है चिर आनन्द-निकेतन।

श्रेष्ठांगिनी

श्रेष्ठांगिनी कहें पत्नी को, अर्द्धांगिनी नहीं केवल;
जीवन के कुल संघर्षों में पति को देती बल-सम्बल।

काम और प्रजनन तक ही क्या
दोनों का सम्बन्ध रहे ?
रहें समर्पित एक दूसरे के
प्रति, चिर आनन्द रहे।

दो हृदयों का मधुर मिलन यह करता जीवन को शाद्वल।

दोनों हैं दो हस्त-चरणवत्,
जैसे दो श्रुतिपुट-लोचन;
दोनों का सहयोग परस्पर
करता जीवन को नन्दन।

अन्तःकरण रहें अनुबंधित, दोनों में भर दें परिमल।

मन को सुमन बनाना वांछित,
कलह और कटुता क्यों हो ?
मानवीयता रहे सर्वदा,
तो संभव पशुता क्यों हो ?

पति-पत्नी सम्बन्ध इसी विधि से बनता सुखपूर्ण-सरल।

सदा सरलता में जीवन है;
क्यों छलछद्म-कुटिलता हो?
क्यों हो मिथ्या-गोपनीयता?
क्यों सम्बन्ध-जटिलता हो?

भार उपार्जन का पत्नी भी लेकर करती सदन सबल।

गृहिणी भी वह, ज्ञानमयी भी,
कर्मयोगिनी भी अपनुम;
देता है जीवन-मधुवन को
चिर वसन्त उसका ही श्रम।

वह वज्रादपि है कठोर भी, चिर कुसुमादपि वह कोमल।

पत्नी को विश्राम और सुख
क्या न अपेक्षित मनुजोचित?
सास-ससुर लें सेवा उससे,
किन्तु प्यार भी दें समुचित।

देवर और ननद के तेवर भरें न उसमें कोलाहल।

जेठ और जेठानी भी क्या
उसे प्यार दें नहीं सदा?
भूलचूक तो सबसे ही
होती रहती है यदा-कदा।

क्षमा, दया, चिर, सहिष्णुता से ही खिलता जीवन-शतदल।

वांछित है कल्याण सभी का,
अकल्याण करणीय कहाँ?
जहाँ नहीं चेतना रहे यह,
क्या संभव सुख-शान्ति वहाँ?

चिर सुधार-अवदान-चेतना से मिलती है शक्ति नवल।

दो तन हों, पर एक हृदय-मन,
पति-पत्नी का यह नाता;
इसी तरह जीने से मानव
सचमुच मानव बन पाता।

अनवरुद्ध जल-धारावत् हो पति-पत्नी का प्यार तरल।

त्याग-समर्पण-सेवा में चिर

दोनों ही हों प्रतियोगी;
करें स्वास्थ्य-रक्षा आपस की,
नहीं उपेक्षित हो रोगी।

मिले सुधा तो पियें उभय मिल, इसी भाँति पी सकें गरल।

स्वार्थ-सिन्धु में मग्न हुआ जो,
कभी कूल क्या पा सकता?
जिसकी वाणी में कर्कशता,
मधुर गीत क्या गा सकता?

क्या सुख-शान्ति कभी पा सकता, पी न सके जो क्रोधानल?

सदा दोष-दर्शन से क्या
सम्बन्ध सुखद हो सकते हैं?
छीन चैन औरों का क्या
नर शान्तिसहित सो सकते हैं?

देखें यदि मन्दता किसी में, करें स्नेह-जल से निर्मल।

भला कलेवर को क्या देखें?
कर्मों पर चिर ध्यान रहे;

निर्मलतामय हो स्वभाव चिर,
सदाचरण-वरदान रहे।

सूर्य-चन्द्रमा सदृश उभय मिल, करें प्रेम का पथ उज्ज्वल।

राखी

क्या न राखी में निहित चिर बहन की शुभकामना है ?
अनुज हों, अग्रज रहें या, सर्वदा सद्भावना है।

मूल्य सूत्रों का भला क्या ?
शुद्ध अनुपम स्नेह का है;
हृदय तो अनमोल होता;
मूल्य सीमित देह का है।

बन्धु के प्रति बहन की चिर अमित मंगलकामना है।

रक्त से निज देह के
बढ़कर बहन के अश्रु होते;
देखते भाई रहेंगे
क्या बहन को दुःख ढोते ?

बन्धु का कर्त्तव्य शाश्वत बहन की संरक्षणा है।

मात्र परिणीता पृथक् है,
मातृवत् सब नारियाँ हैं;
आत्मजा, भगिनी भले हों,
पूजनीया देवियाँ हैं।

राष्ट्र-संस्कृति की सदा पावन यही संचेतना है।

बहन की शुभकामना से
शक्ति भाई प्राप्त करता;
स्नेह भ्राता का मिले तो,
बहन में आती अभयता।

यह परस्पर स्नेहमय सम्बन्ध अनुपम साधना है।

कन्यागम

प्रत्येक जन्म होता ही है ऐतिहासिक,
जन्म-ग्रहणकर्त्ता कोई उद्देश्य ही तो लाता है ?
लाता है कोई स्वप्न, कोई कल्पना;
क्या वह उसे कार्यान्वित करने की चेष्टा नहीं करता ?

माँ के उदर में इतनी लम्बी व्यथा झेलना;
दो सौ अस्सी दिनों तक वहाँ बन्द रहना;
सीधा नहीं प्रत्युत उल्टा टँगने को विवश;
पुत्र हो या कन्या, जन्म की प्रक्रिया तो एक ही है ।

कन्या जब जन्म लेती है तो कहलाती है लक्ष्मी,
बड़ी होकर वही तो गृहलक्ष्मी बनती है;
और अन्नपूर्णा बनकर वही भोजन देती है;
क्या पुत्र करता है कभी भी यह सब कुछ ?

अतः लक्ष्मी कहलाती है जन्म से ही नारी;
किन्तु क्या लक्ष्मी कहकर भी परिवार सन्तुष्ट होता है ?
क्या वास्तविक हर्ष हो पाता है माता-पिता को ?
क्या माताएँ भी पुलकित हो पाती हैं वस्तुतः ?

यदि नहीं, तो क्यों है यह विरोधाभास ?
लक्ष्मी कहकर भी क्यों लोग मनसा उदास ?
उदास इसीलिए तो कि खड़ा है दहेज-दानव,
भारी दहेज की राशि की है भीषण समस्या ।

विवाह तो करना ही पड़ता है कन्या का,
पुत्र चाहे अविवाहित हो रह जाय स्वेच्छया ।
दहेज की बड़ी राशि होती है अनिवार्य;
त्रुटि रहने पर होता है नृशंस वधू-दाह ।

लक्ष्मी की करते हैं दारुण हत्या;
अन्नपूर्णा को करते हैं जलाकर भस्म ।
कैसे चीख सुनेंगे कन्या के माता-पिता ?
क्या नहीं हो जायगा उनका हृदय विदीर्ण ?

कौन चाहता है हृदय की विदीर्णता ?
और कौन चाहता है अपनी सन्तति की दुर्गति ?
कौन सुनना चाहेगा आत्मजा का चीत्कार ?
चीत्कार और क्रन्दन ही तो वधू की नियति है ।

हाँ, यही नियति है मुँहमांगे दहेज के अभाव में,
कन्या के जन्म से ही संलग्न है यह नियति।
अतः माता-पिता कैसे मनायें सच्चा हर्ष-
लक्ष्मी-स्वरूपा कन्या के जन्म पर ?

माता-पिता के लिए पुत्री है सुखदायिनी,
वस्तुतः वही तो है सच्ची सेवाकारिणी।
वह है विद्यामयी और शिल्पमयी;
वह बना देती है सदन को स्वर्ग।

क्या पुत्र कर पाता है वह सब कुछ ?
क्या वह उतना सजा पाता है घर को ?
पुरुष में होती है सहज परुषता;
और नारी है कोमलता की प्रतिमा।

किन्तु कहाँ होता है पुत्री का महत्त्व ?
महत्त्व होता है परन्तु मिल नहीं पाता;
क्योंकि लोकमान्यता है सड़ी हुई;
और कितनी गर्हित है दहेज की कुरीति !

कन्या है सृष्टि की अप्रतिम देन;
जो बनती है भगिनी और गृहलक्ष्मी;
क्या जन्मदायिनी माँ भी वह नहीं बनती ?
क्या वह समुचित समादर के योग्य नहीं ?

परन्तु वह तो समता भी नहीं पाती कभी;
क्या नहीं रहती वह सर्वदा उपेक्षिता ?
न्याय भी उसे कहाँ मिलता है जीवन में ?
क्या जन्म से ही वह कुण्ठिता नहीं रहती ?

किशोरी

बाल्यावस्था - द्वार - पार
बनती बालिका किशोरी
और सोचती क्यों बढ़ती
जाती है आयु निगोड़ी ?

शैशव के आनन्द-छन्द
लगता है, नहीं मुखर हैं,
बाल-चपलता, स्वतंत्रता के
धीमे होते स्वर हैं।

चिन्ता की रेखा-सी खिचती,
पाती खेल नहीं है,
कार्य सीख लो, क्रीड़ा का
जीवन से मेल नहीं है।

सीखो, सीखो, कार्य करो कुछ,
पूर्वाभ्यास करो कुछ;
नाटक समझ निरन्तर कर लो;
कर्माभ्यास करो कुछ।

नारी जीवन की तैयारी
बहुत कठिन होती है;
नारी को विश्राम कहाँ ?
निद्रा भी वह खोती है।

शिल्प-कला से, श्रम से,
कर्मों से निर्मित हो जीवन;
नारी को अपनाना ही
पड़ता बन्धन-अनुशासन।

अनुशासन तो सब में वांछित,
नर हो या नारी हो;
किन्तु भला क्यों बन्धन में
रहने की तैयारी हो ?

नारी में जग रही चेतना
मनुजोचित जीवन की;
समता-संस्कृति-स्वतंत्रता की;
नहीं चाह कंचन को।

भला स्वर्ण-पिंजर-निबद्ध
आत्मा क्या रह सकती है ?
निज मनुष्यता पर वह बन्धन
कब तक सह सकती है ?

नर-अवलम्बित क्यों ? नारी
क्या नहीं स्वनिर्भर होगी ?
पशुवत् जीवन से विमुक्त,
क्या नहीं उच्चतर होगी ?

होगी ही वह, किन्तु किशोरी
भला करे क्या चिन्तन ?
करना ही चाहिए उसे
आदेशों का अनुपालन ।

नहीं आत्म-अनुशासन की
उसमें क्षमता होती है;
क्रमशः ही होगा विकास,
वह बीज अभी बोती है ।

लगे भारवत् चाहे, पर
अभ्यास उसे करना है;
सेवा और समर्पण से
जीवन का घट भरना है ।

सेवा और समर्पण नर-
नारी दोनों में वांछित,
महिला में उसकी विशेषता
है स्वभाव से संचित ।

कार्य सीखती, शिल्प सीखती,
और सीखती लज्जा;
माता से सीखती किशोरी
गृह की शोभा-सज्जा ।

क्रमशः सीखेगी वह सारी
संरचना जीवन की;
संयोजिका बनेगी क्रमशः
जीवन-आयोजन की ।

सन्धिकाल

कैशोर और तारुण्य मध्य
आता जीवन का सन्धिकाल;
बस, इसी काल में होता है
निर्मित जीवन-तरुवर विशाल।

विद्यार्जन से, संस्कारों से
आधार विनिर्मित करना है;
तारुण्यकाल से तो क्रमशः
जीवन मंगलघट भरना है।

जीवन में विविध समस्याएँ
क्रमशः आती ही जायेंगी;
चाहिए बुद्धि-प्रज्ञान कि
नारी उनको सुलझा पायेगी।

दायित्व और कर्त्तव्य कठिन
करने ही होंगे पूर्ण अखिल;
होंगे करने वे मार्ग स्वच्छ,
जो हों कंटकाकीर्ण-पंकिल।

नारीत्व अभो जाग्रत होता,
होता है सेवा-भाव सजग;
संकोच प्रकट होने लगता,
होता विकास-अम्बर जगमग।

होने लगता प्रत्यक्ष कि है
नारीत्व विशेष सुशील, विनत;
लोचन होते हैं लज्जानत;
नारी का प्रेम शान्त-संयत।

लानी है नारी को, परन्तु,
क्या नहीं आत्मनिर्भरता भी?
सद्गुण-समूह से स्वाभाविक
मिट सकती है नश्वरता भी।

सद्गुण-विकास की वेला यह,
वांछित है इसका सदुपयोग;
जीवन की मंगल-रचना का
आरम्भ अभी होता प्रयोग।

अन्याय, दमन या अनाचार
के सम्मुख नारी है ज्वाला;
शुभ सदाचार के सम्मुख वह
बनती है सुमनों की माला।

है आग्नेयता-मृदुलता का,
कोमलता का करना विकास;
देना जगती को उसे सदा
करुणा-ममता-छवि का प्रकाश।

अभ्यास अभी से करना है,
लानी है सारी गुणमयता;
बन वज्रादपि कठोर उसको
देनी वसुधा को निर्भयता।

वह सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी;
वह त्रिविध शक्तियों से मण्डित;
विद्या-बल-वैभव की देवी
बनकर कर सकती परिमार्जित।

वह श्रद्धा-निष्ठा-परिनिष्ठा,
बन सकती है वह कल्याणी;
मंत्रणा-मार्गदर्शन से चिर
पूरित हो सकती है वाणी।

सम्पूर्ण कुदृष्टि-कुमतियों से
होना है उसको सावधान;
वह बने मन्थरा-शूर्पणखा?
क्या इसमें उसका स्वाभिमान?

दुर्गाबाई, लक्ष्मीबाई,
जीजाबाई, रजिया बेगम;
बन सकती वही महादेवी,
बन सकती वह सद्‌गुण-संगम।

है सन्धिकाल भी संगम ही,
बन सकता है वह तीर्थराज,
पावन गुणवत्ता-संयम से
बन सकता है पावन समाज।

दायित्व पारिवारिक ही क्या ?
वह तो होता सामाजिक भी,
बल शारीरिक ही क्या होता ?
होता नैतिक-चारित्रिक भी ।

चेतना सुविकसित करनी है,
नारी पर है, दायित्व अमित,
क्या नर-पूजा सामान्य नियम ?
नारी-पूजा है स्मृति- सम्मित ।

कान्तासम्मित उपदेशों से
उन्नत होता है नर-समाज;
नारी जब हुई उपेक्षित है,
तब हुआ न क्या नर का अकाज ?

हो आयु भले ही अपरिपक्व,
परिपक्व बुद्धि-आचरण रहे;
उसको हँसते ही रहना है;
हँसकर ही नारी दुःख सहे ।

गुण किन्तु नहीं अतिशय हँसना;
वांछित है सब कुछ मर्यादित;
नारी मर्यादा की प्रतिमा;
अभ्यास करे प्रतिपल नियमित ।

मर्यादित सब कुछ नारी का,
निद्रा, भोजन, प्रहसन क्रीड़ा;
सर्वदा असीमित हैं केवल
श्रम, शिल्प, कर्म, पीड़ा, व्रीड़ा ।

मीराँ हो या कि महादेवी,
दोनों पीड़ा-गायिका अमर,
जीवन में होती आवश्यक
पीड़ा-सहिष्णुता-शक्ति प्रखर ।

इसलिए शक्ति की संज्ञा से
नारी जग में मण्डिता हुई;
यह सहिष्णुता अभ्यास-सिद्ध,
नारी की चिर साधिता हुई ।

इन उभय काव्यकारिणियों ने
कितना महान् सन्देश दिया,
नर भी तो वही अमर जिसने
परपीड़ा को भी वरण किया।

अभ्यास इसी का करना है,
जीवन है कोई खेल नहीं;
केवल सुख की आकांक्षा का
जीवन से कोई मेल नहीं।

यह सन्धिकाल अभ्यास-काल;
चाहे हम पूर्वाभ्यास कहें;
यह सहिष्णुता है शक्ति प्रबल,
क्या इसे शक्ति-उपहास कहें?

कुण्ठा-संत्रास भला क्यों हो
चिर त्यागमयी महिलाओं को?
क्या नहीं सदा हरती आई
पुरुषों की भी बाधाओं को?

यह सत्य नहीं कल्पनालब्ध,
कवि का अवलोकित, स्वानुभूत;
कैशोरकाल से ही अपनी
देवो में था यह अनुस्यूत।

नारी को भला कहें अबला?
उससे बढ़कर है कौन सबल?
युग-युग से वह पीती आई
जग का अशान्तिगत कोलाहल।

अभ्यास-सिद्ध उसको करना
जीवन के शाप स्वयं लेना;
जग को वरदानों का वैभव
निज सतत साधना से देना।

यह सन्धिकाल है, इसीलिए
इसका महत्त्व है चिर चर्चित;
इस वेला में अंकुरित हुए
जो तत्त्व, वही होंगे विकसित।

तारुण्योदय

क्रमशः होता तारुण्योदय,
कैशोर-सन्धि का जहाँ अन्त;
जग में जाग्रत-पुष्पित होते
हेमन्त, शरत्, मधुमय वसन्त।

तारुण्य जागरण-सा आता;
होता है छवि का अरुणोदय;
सौन्दर्य-शक्ति का यह संगम
करता जीवन को मंगलमय।

सुषमा-परिणता सदा नारी;
होना है उसको परिणीता;
वह वीरांगना सदृश विकसित;
कैसे हो सकती वह भीता ?

हो गई कला-कौशल-सज्जित;
जीवन को सज्जित कर सकती;
परिवार-दीप में नया स्नेह—,
नूतन प्रकाश है भर सकती।

बन सकती है भार्या-जननी,
कर सकती है सन्तति-पालन;
है कर सकती करकमलों से
छविमय-सुखमय मानव-जीवन।

कर सकती वसुन्धरा मण्डित
निज श्री के शुभ संस्कारों से;
या भस्मसात् कर सकती है
आक्रोशजन्य अंगारों से।

पर नारी अबतक सीख चुकी
रहती रखना निर्भ्रम संयम;
वह सहिष्णुता-सन्तुलनमयी
कर सकती है आवश्यक श्रम।

होकर विवाहिता कर सकती
दाम्पत्य स्नेहमय पूर्ण सफल;
परिवार और परिवेश अखिल
कर सकती जीवनमय-उज्ज्वल।

पर क्या आवश्यक-उचित नहीं
करना उसकी रुचि का आदर ?
उसकी इच्छा क्या अर्थहीन ?
उसका उर क्या है जड़ प्रस्तर ?

कन्या की इच्छा का न मूल्य
क्या वर की इच्छा के समान ?
क्या हर्ष-तोष नारी के हैं
होते न तनिक भी मूल्यवान् ?

जीवन-संगी थोपा जाये
नारी पर, क्या यह समीचीन ?
उसके विचार का मूल्य न हो,
क्या वह ऐसी पराधीन ?

जीवन-साथी का चयन सदा
रखता है सर्वोपरि महत्त्व;
की जाय उपेक्षा इसकी तो—
जीवन में होगा कहाँ तत्त्व ?

ऊपर से यदि लादा जाये
घातक दहेज-दानव भीषण;
तो क्या परिणय होगा सुन्दर ?
क्या सम्यक् हो सकता यौवन ?

हो जाता है जैसे विवाह
निष्ठुर दहेज पर ही निर्भर;
कन्या के माता-पिता व्यथित;
नारी-जीवन होता दूभर।

कितना नृशंस वधू-दाह ?
होतीं दहेजहित हत्याएँ;
सचमुच नारियाँ बनीं अबतक
इसके कारण हैं अबलाएँ।

धन से विवाह क्या होना है ?
होता विवाह नर-नारी का;
नारी-महत्त्व क्या न्यून कभी ?
वध क्यों करते सुकुमारी का ?

कुछ सद्विचार तो करें मनुज,
कुछ तो उनमें हो यह क्षमता ?
समता समाज में है वांछित,
क्या यह नर-नारी की समता ?

रूढ़ियाँ न जाने कब टूटें,
कब हो समाप्त सामन्तवाद;
इनके चलते नर-नारी के
जीवन में रहता कौन स्वाद ?

देता न एक पग भी चलने
दुर्दान्त रूढ़ियों का बन्धन;
भीषण कुरीतियों से मानव-
जीवन बनता दुख का कारण।

कर सके भग्न इनको सत्वर,
चाहिए न क्या अभियान त्वरित ?
चेतना अपेक्षित क्या न प्रखर ?
क्या कर्म न वांछित मनुजोचित ?

परिणय से नारी पर शत-शत
लगते प्रतिबन्ध, कठिन बन्धन;
पग-पग पर नित आशंका-भय,
जीवन में भर जाता कम्पन।

जाने किन कर्मों-शब्दों से
हों असन्तुष्ट जन और कुपित;
हो सकते कुपित अकारण भी;
नारी इसलिए सतत चिन्तित।

क्या करे और क्या नहीं करे ?
परमुख-अपेक्षिणी रहती है;
देखता कौन, वह घुट-घुटकर
कितनी विपदाएँ सहती है ?

जाने कब समुचित रूप ग्रहण
कर पायेंगे नारी-विवाह ?
कब समादृता हो पायेंगी
नारी की रुचि, मति और चाह ?

क्या पुराचीन भारत में भी
थीं ये कुरीति-रूढ़ियाँ घोर ?
क्या प्रतिबन्धित-उत्पीड़ित था
नारी-जीवन का पोर-पोर ?

नारी तो पूज्या थी, विशिष्ट
आदर उसका करता समाज;
था इसीलिए भारत उन्नत;
हो गया पतन क्या नहीं आज ?

कितनी उन्नत भारत-संस्कृति !
पर आज नहीं क्या अधःपतन ?
यदि पुनरुत्थान अपेक्षित है,
चाहिए न क्या करना चिन्तन ?

नारी-आदर के बिना कहाँ
भारत की संस्कृति का आदर ?
समता नितान्त न्यायोचित है;
कब हम इसको पायेंगे कर ?

गार्गी, गौतमी कि मैत्रेयी,
या कात्यायनी हुईं विस्मृत;
यदि वे न हुई होतीं, भारत
तो रह जाता ही अनलंकृत ।

अधिकार न मिलता नारी को
यदि पुरुष-वर्ग की समता का,
तो लाभ कहाँ पा सकता है
भारत नारी की क्षमता का ?

है दण्डविधान दहेज-प्रथा,
यद्यपि नारी है निरपराध;
पुरुषों की ही क्या साधें हैं ?
नारी की कोई नहीं साध ?

पर कुरीतियों की समर्थिका
नारियाँ भला क्या नहीं यहाँ ?
रूढ़ियाँ पालती रहती हैं,
वे करती हैं विद्रोह कहाँ ?

बन श्वश्रू नारी वधुओं
को क्या नहीं सताया करती है ?
माताएँ क्या कन्याओं की
आँखें न अश्रु से भरती हैं ?

पुत्री को पुत्रों के समान
मिल पाता स्नेह कहाँ नियमित ?
वे हैं उपेक्षिता-प्रताड़िता,
मनुजोचित स्वत्वों से वंचित।

कितनी सहिष्णुता नारी में ?
सब कुछ गुमसुम रह सहती है;
घुटती रहती है अपने में,
कुछ नहीं किसी से कहती है।

अपनी क्षमता का सब कुछ वह
देने को रहती है तत्पर;
कैसे समाज पा सकता है,
जिसकी सुधार-गति है मन्थर ?

वांछित विवाह में है सुधार,
दानव दहेज का नहीं रहे;
गृह की लक्ष्मी नारी ही है,
यह अमृतचेतना-धार बहे।

नारी सरस्वती भी होती,
देती संस्कृति-साहित्य-कला;
यदि स्वस्थ रहे तो है दुर्गा;
फिर कौन बना सकता अबला ?

है सदा अन्नपूर्णा नारी,
देती है स्वास्थ्य ,सुरुचि, भोजन;
नर क्यों कृतघ्न ? दे उसे दण्ड ?
क्यों हो दहेज का संरक्षण ?

नारी प्रसन्न रक्खी जाये,
तो देती है उल्लास-हास;
हम क्यों न करें उसका स्वागत ?
उससे पायें सौरभ-प्रकाश।

गृहिणी

गृह तो बनता गृह तभी कि जब
गृह में गृहिणी का रहे वास;
स्वच्छता-स्वास्थ्य-सौरभ देकर
करती सुख-मंगल का विकास ।

देती है शिवम्-सुन्दरम् वह;
करती जीवन का पथ प्रशस्त;
सहयोग-दान करती व्यापक;
देती जीवन को छवि समस्त ।

सीता समान पति के जीवन-
वन में सुख-मंगल भर देती;
पार्वती सदृश जीवन-पर्वत—
में प्राण-प्रतिष्ठा कर देती ।

वह स्वर्गकल्पना से बढ़कर
गृह का सर्वस्व बना सकती;
नर के अन्तस्तल में संचित
सारा आलोक जगा सकती ।

विश्वास-स्नेह-श्रद्धा से वह
कर सकती है प्राणार्पण भी;
दे सकती पोषण-सेवा में
अपना समस्त बल-जीवन भी ।

कोई न कार्य ऐसा जग में
जिसको न नारियाँ कर पायें;
निज गति-मति-धृति-कृति से
नभ से नक्षत्र धरा पर वे लायें ।

वे हैं कमनीया, कान्तिमयी,
वज्रादपि हो सकतीं कठोर
सुख-शान्तिमयी, वे क्रान्तिमयी;
ला सकतीं सागर में हिलोर ।

वे गृहशोभा, जीवन-शोभा,
वे प्राणमयी, निर्माणमयी;
वे विषपायिनी, सहिष्णु विरल,
जयगानमयी, बलिदानमयी ।

वे नृत्यमयी, संगीतमयी;
वे चित्र-मूर्त्ति-अभिनय-प्रवीण;
जीवन रूपी हिमगिरि के वे
सर्वोच्च शिखर पर समासीन।

व्यवहारकुशल, कल्पनामयी;
यह विस्मयजनक समन्वय है;
उत्थान-पतनकारिणी विरल;
नारी का यह लघु परिचय है।

गृह में नारी हो समादृता,
तो नर का ही सुखमय जीवन;
हो देव कल्पनावत् सन्तति;
हों भग्न विवशता के बन्धन।

वह शीलमयी, चिर कर्ममयी;
कर सकती गृह को दुःखमुक्त;
कर सकती है तम का विनाश,
जीवन कर सकती प्रभायुक्त।

गृह की शोभा में बसती है
नारी-कौशल की कला-दृष्टि,
घर की आकृति में करती है
नारी सुषमा की प्राण-सृष्टि।

गृह के कण-कण में रहता है
नारी का स्पर्श परम सुन्दर;
करती अभिनव निर्माण वहाँ
नारी उसके बाहर-भीतर।

निज स्पर्शों से नारियाँ न क्या
जग को जीवन्त बना देतीं?
क्या नहीं ग्रीष्म को, पावस को
वे हैं सुवसन्त बना देतीं?

कोकिल-स्वर को करती न तुच्छ
क्या उनकी सुधामयी वाणी?
सुमनों को देती नये रंग-
सौरभ उनकी छवि कल्याणी।

प्रत्येक शब्द में भर सकती
नारी जीवन का दिव्य अर्थ;
अपनी सेवा से कर सकती
असमर्थ पुरुष को भी समर्थ।

कर सकती सरल कठिन को वह,
प्रत्येक असम्भव को सम्भव;
गृह को दे सकती है गृहिणी
गरिमा, सुषमा, जीवन, वैभव।

शैशव-किशोरता में ही तो
सेवा का पूर्वाभ्यास किया;
पा चुकी प्रशिक्षण वह सबका,
कर्मों के हित आयास किया।

अब तो गृह की ही बात नहीं,
वह राष्ट्र समस्त चला सकती;
हो जहाँ मृत्यु का तिमिर व्याप्त,
वह जीवन-दीप जला सकती।

भोजन में उसका स्नेह-स्वाद,
कण-कण में उसका छवि-सुवास;
यदि स्नेह-सिक्त हो पाये वह,
दे सकती चिर उल्लास-हास।

जो दीप सदन में जलते हैं,
उनमें रहता उसका प्रकाश;
यदि उसे उदासी दी जाये,
कण-कण हो जाता है उदास।

स्वच्छता-स्वास्थ्य की देवी वह,
करती सदैव आरोग्य-दान;
आतीं सरस्वती ही जैसे,
नारी करती है जहाँ गान।

लक्ष्मी ही केवल नहीं अलम्;
दुर्गा-सरस्वती भी वांछित;
गृह में नारी सब कुछ लाती,
यदि रहती वह चिर अभिनन्दित।

गृह तक ही सीमा नहीं, कर्म
का क्षेत्र सदा अतिशय व्यापक;
अपमान सर्वदा नारी का
होता घातक, जीवन-बाधक।

नारी स्वेच्छया वहन करती
अपना सारा कर्त्तव्य-भार;
पर नहीं सहन कर सकती है
अन्याय, दमन या अनाचार।

अधिकार उसे भी हैं अवश्य,
उसको भी हैं निज इच्छाएँ;
हैं समाधान के योग्य न क्या
उसकी भी निजी समस्याएँ?

देती नर को सहयोग सदा,
चलती हैं नर से चरण मिला;
नर के पथ पर यदि शूल बिछे,
देती है कोमल पुष्प खिला।

गृह-प्राचीरों से निकल दूर
जा सकती है रण-प्रांगण में;
वह वीरांगना उठा लेती
है अस्त्र-शस्त्र संरक्षण में।

नर की रक्षा में भी नारी
पीछे न तनिक रहनेवाली;
हाँ, पल में प्रलय मचा सकती
बन भीषण रणचण्डी, काली।

जीवन समता का है प्रवाह;
इसमें क्या रखना भेदभाव?
कितना दुःखान्त जगत् रहता,
यदि होता नारी का अभाव?

नर-नारी को मिलकर चलना
है जीवन के दुर्गम पथ पर;
समगति से दोनों की बनता
जीवन चिर मंगलमय, सुन्दर।

पीहर-स्मृति

नर से नारी की विशेषता,
वह दो सदनों की प्रतिमा है;
पतिगृह की यदि लक्ष्मी है वह,
तो पीहर की भी गरिमा है।

पीहर के ले संस्कार अखिल,
बन वधू श्वशुर-गृह जाती है;
करती संस्कार वरण गृह के,
दोनों की महिमा पाती है।

महिमा-गरिमा-मण्डिता हुई;
होती विशेषता से मण्डित;
ले विशेषताएँ दो सदनों—
की भी न कभी करती खण्डित।

वह प्रेम एकता की दूती,
करती न कहीं खण्डन-लघुता;
देती जग को मार्दव अपार—
उसके अन्तस्तल की मृदुता।

चलती कितना दायित्व लिये!
नारी सचमुच दायित्वमयी;
उसकी तुलना क्या कर सकता—
नर हो कितना भी दिग्विजयी?

जिस घर में भी नारी जाती,
देती मुरझाये फूल खिला;
वह सेवा-ममता की प्रतिमा,
देती है जैसे अमृत पिला।

नारीत्व स्मरण यदि रखती तो,
देती सदैव अपना प्रकाश;
करती विनाश यदि वह कोई,
केवल करती पशुता-विनाश।

यों कर सकती पशु-पालन भी;
पशु में, पशुता में है अन्तर।
कोमलता की प्रतिमा भी वह;
बन सकती है निष्ठुर प्रस्तर।

आ-आकर करती रहती हैं
पीहर-स्मृतियाँ उसको विचलित;
माँ, पिता, बन्धुओं-बहनों की
स्मृतियाँ करतीं उसको पीड़ित।

सखियों-चाचियों-भाभियों की
स्मृतियों से वह होतो कातर;
परिवेश, कि आँगन की, घर की
स्मृतियाँ आती हैं रह-रहकर।

पर उसे श्वशुर-गृह की सेवा
करनी है पूर्ण समर्पण से;
श्वश्रू, पति और देवरों की,
ननदों की सेवा तन-मन से।

विस्मृत करनी पड़ती उसको
प्रिय जन्म-सदन की ममता भी;
कोमल अन्तस्तल में लानी
पड़ती प्रस्तर की क्षमता भी।

पीहर के बाद श्वशुर-गृह को
देती नारी अपना प्रकाश;
रहती जब जहाँ वहाँ भरती
परिजन-मन में उल्लास हास।

हरती दुख सहकर दुःख-तिमिर;
जल-जलकर देती शीतलता;
भर देती कण-कण, जन-जन में
स्वच्छता, स्निग्धता, उज्ज्वलता।

वर्षों तक जलती रही वहाँ,
अब दीपशिखा जल रही यहाँ;
करती है व्यापक प्राण-सृष्टि
नारी जाती है जहाँ-जहाँ।

विस्मृत-सी कर देनी पड़तीं
स्मृतियाँ सारी प्रिय पीहर की,
लेखनी न लिख पाती, कितनी
सेवा करती नारी नर की।

विस्मृत करती क्रीड़ा-कौतुक;
करती विस्मृत प्यारा बचपन;
करना पड़ता है उसे वरण
दुर्वह दायित्व-भरा जीवन।

माता बन सकने से पहले
भी दायित्वों का भार कठिन;
दायित्व-भार तो बढ़ता ही
जाता है श्वश्रु-सदन दिन-दिन।

पर हँस-हँसकर झेलती सदा,
ननदों से करती ठिठोलियाँ;
लगता, बरसाती रहती है
वह घर-आँगन में फुलझड़ियाँ।

आँगन तक ही क्या है सीमा ?
वह दूर-दूर भी है जाती;
आर्थिक अभाव से है लड़ती;
साधन सुदूर से भी लाती।

सहती कटाक्षमय वाक्य-बाण,
झेलती विघ्न-बाधा भारी;
लेखनी कहाँ लिख पायेगी
कितनी सहिष्णु होती नारी ?

कितनी सहिष्णु-बलिदानमयी !
नारी सदैव निर्माणमयी !
निर्माणों के कितने प्रकार !
नारी है जीवनदानमयी !

पीहर के प्रांगण से आकर
रचती है सृष्टि स्वयं नूतन;
तप कर ज्वाला में बन जाती
वह शुद्ध, स्वच्छ, सच्चा कंचन।

वस्तुतः स्वनिर्मित जो होता,
उसका आनन्द पृथक् होता;
गृह-नीड़ छोड़कर आती है;
रचती है स्वयं नया खोंता।

नारी सुबुद्धि-श्रम की प्रतिमा;
करती है अथक-अनवरत श्रम
वह आत्मनियंत्रण करती है;
रखती सन्तुलन और संयम।

स्मृतियाँ सुमधुर ले पीहर की,
सारी सहेलियाँ गईं बिखर;
ज्यों विहग-बालिकाएँ वन की
उड़ती हैं होकर तितर-बितर।

श्रम ही जीवन का मूल मंत्र;
है कला-शिल्प उसका यौवन;
नारी मानवता के मरु को
देती हरीतिमा का मधुवन।

अपने नयनों में लिये अश्रु;
देती है वसुधा को सुहास;
श्रम-सीकर से सींचती धरा;
क्या लगता उपवन अनायास?

नारी ज्वाला झेलती हुई,
देती वसुधा को शिल्प-कला;
पाषाण मोम को कर देती;
देती कठोर प्रस्तर पिघला।

पीहर-निर्मित कोमल शरीर
डालती श्वशुर-गृह मध्य गला;
कर्त्तव्यभार से दबी सदा,
पर क्या उसका अधिकार भला?

अधिकार रह गये पीहर में;
वह जहाँ मचलती रहती थी;
रूठती, झगड़ती भी थी कुछ;
जो मन में आता कहती थी।

पर यह तो पीहर नहीं, यहाँ—
कर्त्तव्य-भार ढोना पड़ता;
स्मृतियाँ यदि कर देतीं विह्वल
तो भीतर ही रोना पड़ता।

गृहलक्ष्मी बनाम दहेज

गृहलक्ष्मी से बढ़कर क्या होता दहेज है ?
क्या निर्जीव वस्तुएँ होती हैं जीवन-प्राणों से बढ़कर ?
सद्गुण-रत्नों से बढ़कर क्या होता है मुद्रागत वैभव ?
क्या साधन होते चरित्र से, शील-साधना से श्रेयस्कर ?

वर-विक्रय की प्रथा घोर, क्या यही सभ्यता है कहलाती ?
गृहलक्ष्मी का मूल्य नहीं, क्या यही सुसंस्कृति है मानव की ?
घोर उपेक्षा, प्रताड़ना, उत्पीड़न, दंशन, कठिन यातना,
वधूदाह, हत्या वधुओं की, भला क्रियाएँ हैं गौरव की ?

गृहिणी की आवश्यकता क्या नहीं हुआ करती है गृह में ?
यदि उसका अस्तित्व निरर्थक, तो करता मानव विवाह क्यों ?
यदि आवश्यक है नर के जीवन में नारी का भी जीवन;
तो फिर गृहिणी-गृहलक्ष्मी का अमानुषिक होता प्रदाह क्यों ?

देवी-पूजा व्यर्थ नहीं क्या ? यदि नारी होती अपमानित;
नारी का सम्मान नहीं, तो नर को क्या सम्मान मिलेगा ?
प्रकृति नहीं तो पुरुष कहाँ है ? क्या संस्कृति जीवित रह सकती ?
नारी की सम्मान-रश्मि से ही तो जीवन-कमल खिलेगा।

कोमलता, सौन्दर्य, स्वच्छता तो नारी ही दे सकती है;
निष्ठुरता, क्रूरता, घृणा, से क्या संभव है मानव-जीवन ?
जीवन-सुरभि निहित नारी में, सुखद भविष्य निहित है उसमें,
सुखद अंक उसका करता भावी पीढ़ी का पालन-शिक्षण।

नारी को क्या रुदन मात्र ही, स्मिताधिकार नहीं उसको है,
क्या न उसे चाहिए मुक्ति ? क्या उसे सदा अभिशाप चाहिए ?
वंचित रहना जीवन-वरदानों से सदा नियति नारी को ?
सुख स्वप्नों से वंचित रह, क्या उसे सदा सन्ताप चाहिए ?

नारी-दहन

भारत का परिचय था कि
नारियों की पूजा होती है;
कम से कम प्रतिष्ठा और
सुरक्षा तो होती ही थी।

किन्तु अब प्रतिष्ठा के स्थान पर
होता है सामूहिक बलात्कार भी।
सुरक्षा के स्थान पर है दहन,
कुछ सामान दहेज में न मिलने पर।

वर का चाहिए समुचित मूल्य ?
जो पहुँच गया है लाखों तक।
वधू का तो कोई मूल्य नहीं,
दहन और प्रताड़ना ही उसकी नियति।

परतंत्र भारत में ऐसा नहीं था;
किन्तु स्वतंत्र भारत में तो है ही।
क्या दहन और बलात्कार ही है स्वतंत्रता ?
क्या स्वतंत्रता है रक्तपात और हत्या ही ?

भारत की बड़ी है जनसंख्या, यह कथन;
यह जनसंख्या है या जन्तुसंख्या ?
जन्तु भी मात हैं पशुता से;
यह नरता है या है नृशंसता ?

इस नृशसता से देश कहाँ जायगा ?
कौन-सा होगा राष्ट्र का उत्थान ?
क्या अधःपतन नहीं है यह घोर ?
कहाँ है इसमें संस्कृति या सभ्यता ?

स्वतंत्रता भी है क्या यह सच्ची ?
यदि यही स्वतंत्रता है तो क्या है परतंत्रता ?
क्या स्वतंत्रता वहाँ संभव होती है ?
जहाँ रहती है ऐसी अमानुषिकता ?

क्या नहीं है यह अनाचार और अनय ?
कहाँ है स्वतंत्रता यदि न्याय नहीं ?
यह तो है बर्बरता का नग्न ताण्डव;
विधि-व्यवस्था से रहित, निरंकुश।

कब करेंगे इस दुर्गति का अन्त ?
कब लायेंगे न्याय और सुरक्षा का वसन्त ?
न कहें नारी को गृहलक्ष्मी-गृहस्वामिनी;
किन्तु उसे सुरक्षा, न्याय और समता तो दें ?

संस्कृति देगी हमें कैसा प्रमाणपत्र ?
कैसी होगी प्रगति ? कैसा इतिहास ?
केवल होगा रक्तपातमय पावस ?
क्या नहीं आयेगा इस देश में मधुमास ?

नारी अपमान क्या भारतमाता को है सहन ?
क्या नहीं है स्वयं भारतमाता का अपमान ?
क्या नहीं है यह भारतमाता की दुर्गति ?
क्या हम कहलायेंगे सच्ची भारत-सन्तान ?

यदि ऐसा ही रहा अमानुषिक व्यवहार,
तो नहीं विदीर्ण होगा भारतमाता का हृदय ?
क्या नहीं होगा राष्ट्र लगातार छिन्न-भिन्न ?
क्या नारी-संहार से नहीं होगा नर-संहार ?

वधू-वध

भला वधू-वध भी कोई कर्त्तव्य मनुज का ?
इस वध से उपलब्धि भला क्या हो पाती है ?
क्या भीषण अपराध नहीं यह चिर अमानुषिक ?
कहाँ सभ्यता-संस्कृति इसमें रह जाती है ?

मानव-प्राणों से बढ़कर होता दहेज क्या ?
क्या दहेज-स्वामिनी कहीं कन्या रहती है ?
कुछ वस्तुएँ नहीं मिलतीं तो करे वधू क्या ?
यदि जीवित रहती तो कितने अत्याचार सदा सहती है ?

भला वधू-हत्या से मिल जाता दहेज है ?
अस्त्र-शस्त्र तो मिट्टी का तन ही काटेगा;
और अग्नि भी कहाँ व्यक्ति को जला सकेगी ?
जल-समाधि भी देकर कोई प्राण हरेगा ?

मूल्य नहीं कुछ होता क्या मानव-जीवन का ?
वह गृह को शोभित, समृद्ध करती जीवन भर;
वह गृह की निधि, ज्योति, शक्ति, श्री है, सुषमा है,
सेवा-सुख-सन्तति प्रदान करती अविनश्वर ।

अमर दीपिका वधू, उसे चिर स्नेह चाहिए;
सदा चाहिए उसे समादरमय संरक्षण;
मात्र देह ही नहीं, वधू चिर प्राणदायिनी;
स्वयं वरण कर लेती है वह कष्ट अकारण।

अहित परिजनों का वह करती हरण सर्वदा;
चिर संवर्द्धित ही करती है हित के साधन;
नर का जीवन भी होता है रक्षणीय ही;
नर से क्या कम रक्षणीय है नारी-जीवन ?

मातृत्व-निर्माण

सबका ही निर्माण अपेक्षित, सन्तति का, माताओं का भी;
आवश्यक निर्माण-शक्ति है भला नहीं क्या माताओं में ?
शक्तिरूपिणी मातृजाति में आवश्यक हैं सभी शक्तियाँ,
क्या न शक्ति से ही बनती माता सुरक्षिका विपदाओं में ?

माँ की विशेषता के बोधक दो नवरात्र वर्ष में होते;
माँ में मंगलदृष्टि अपेक्षित, बने सदा वह सर्वमंगला;
पत्नी सदा एक की होती, माता तो है सभी जनों की;
ज्यों सबकी माता होती है भारतमाता शस्यश्यामला।

सभी मंगलों की दात्री वह, सदा सभी की वह हितैषिणी;
सन्ततिवत् उसके सारे जन; भूमावत् है उसको महिमा;
चिर मंगलकारिणी रहे वह, सदा सर्वपुरुषार्थ-साधिका;
शाश्वत है पुरुषार्थमयी वह, कितनी व्यापक उसकी गरिमा !

चिर सद्वृत्ति-शरण्या है वह, देती सबको सदा सदाश्रय;
वह मानवता की विकासिनी, सदा अमानवता-विनाशिनी;
मानव-मूल्यों की सुरक्षिका, वह चिच्छक्तिमयी है शाश्वत;
माँ सदैव शिववृत्तिदायिनी, निर्भयता-शार्दूलवाहिनी।

दिव्यदृष्टि-मण्डिता सर्वदा, चिर माता के पद हैं पावन;
क्षमा-कृपा समताप्रदायिनी; भौतिक आत्मिक शक्तिदायिनी;
सदा निर्मला-शुभ्रा-दक्षा, सुरभिमयी, आलोकमयी चिर;
हे संघर्ष-विजयबल-दायिनि ! माँ सदैव आह्लादकारिणी;

अखिल शुभ्रता की प्रदायिनी माँ, समस्त की शुभ्रकारिणी;
हे जननी विश्वात्मभात्र की; नारायणि ! सर्वात्मरूपिणी;
बड़ी साधना से करतीं तुम अपना शुभ मातृत्व सुविकसित,
चरम कठिन साधना-मार्ग से बनती हो तुम सिद्धिदायिनी ।

मानव को निर्माण - साधना सिखलातीं हैं माताएँ ही;
जीवन का निर्माण साधना से सदैव साधित होता है;
गंगावत् गतिमान सर्वदा रहना ही जीवन है होता;
प्रगति अपेक्षित सदा, मृतकवत् है वह जो निष्क्रिय सोता है ।

गति भी माता ही है, जैसे सुरसरिता माता होती हैं;
सदा रश्मियों से माता मानव-समाज को नहलाती है;
चिर प्रकाशदात्री माता को अर्पित सादर नमन मनुज का;
शरत्-वसन्त लिये माताएँ चिर वसुन्धरा में आती हैं ।

क्यों न ज्योति से, सौरभ से हम सारी वसुन्धरा को भर दें ?
क्यों न शुभ्रता से वसुधा को कर दें हम शाश्वत परिपूरित ?
एतदर्थ शुभ्रतापूर्ण, ज्योतिर्मय हमको होना होगा;
क्यों न सुरभि से कर दें निज को, जन-जन को चिर सौरभ-मण्डित ?

धरती को रखना है ऐसा, यह भी तो माता है अपनी;
इसका तो निर्माण मनुज को ही सदैव पड़ता है करना;
क्षमा, कृपा, करुणा, अवदानों की समस्त निधियाँ दे-देकर,
ऋतम्भरा विश्वम्भरता से है सदा हमें अवनीतल भरना ।

त्रिविधा-नमन

हे विद्या-बल-विभव-साधिके !
हे नारी मातृत्वमयी चिर;
है त्रिकाल-वन्दना तुम्हारी,
तुम देती हो चिर प्रोत्साहन ।

यह त्रिविधा साधना चले चिर;
दो सन्तति को त्रिविध शक्तियाँ;
माता की सन्ततियाँ सब हैं;
अर्पित हो सबका अभिवादन ।

रहे सदा व्यक्तित्व तुम्हारा
त्रिविध शक्तियों से परिमण्डित;
यह उदात्त अस्मिता तुम्हारी
सदा रहे पाती परिवर्द्धन ।

घोर अविद्या का विनाश हो;
हो विनष्ट हिंसा-महिषासुर;
शान्ति-प्रीति-समता के स्वर ले,
करो सदा तुम वीणावादन ।

सदुपयोग, मित व्यय से पूरित
साधन-सुविधा रहे सन्तुलित;
बल-वैभव जनमंगलकर हों;
सदा करें ऐसा आयोजन ।

क्यों विनाश-आपाधापी हों ?
ये हैं जीवन के स्वरूप क्या ?
निहित कहाँ इनमें मानवता ?
क्या हैं ये मानवता-साधन ?

चिर संस्कृति-साहित्य-कला से
क्यों न रहे मानव परिभूषित ?
मानव-मूल्यों से परिमण्डित
क्यों न रहे चिर मानव-जीवन ?

सभी सुखी, सक्रिय निर्भय हों
चिर, यह शुभकामना तुम्हारी;
विहगमुक्त हों मानवता के;
मानव को दो यह शुभ शिक्षण ।

मातृ-शक्ति

मातृमहिमा यदि नहीं, जीवन कहाँ है ?
जन्मधारण या कि परिपालन कहाँ है ?
शक्ति भी माँ के सदृश क्या है धरा पर ?
सदृश माता के कहां शिक्षण कहाँ है ?

देह देकर प्राण भी माँ डालती है;
दूध से, निज रक्त से भी पालती है;
अस्थियाँ देकर; स्वयं आमय सहनकर;
पुष्ट साँचे में सदा माँ ढालती है।

शक्ति बनकर निखिल बाधाएँ हटाती;
कमल जीवन का वही कमला खिलाती;
शारदा बन वह सदा देती प्रशिक्षण;
सर्वदा माँ चेतना उन्नत बनाती।

माँ परम बलशालिनी, अबला नहीं है;
सर्वदा संघर्ष में जयिनी रही है;
वह सदा चलती अमर आलोक लेकर;
त्याग-तप की मूर्त्ति वह बनती सही है।

सर्वदा हो संग नारी तो विजय है;
वह मिटा सकती किसी का भी अनय है;
वह रहे पत्नी कि पुत्री या कि भगिनी;
सर्वदा मातृत्वमय रखती हृदय है।

वह सदा प्रलयाग्नि से भी खेलती है;
कठिनतम संघर्ष भी वह झेलती है;
प्रबल झंझावात से भी चरम निर्भय;
विघ्न की चट्टान को भी ठेलती है।

बढ़ चले नारी, कहाँ बाधा रहेगी ?
यदि रहे विष भी, सदा हँसकर पियेगी;
वह चले यदि साथ, नर का बल बढ़ेगा;
सर्वदा नारी मनुज को शक्ति देगी।

वह चलेगी कर्म का दीपक जलाये;
ज्योति चिर उत्सर्ग-सेवा की जगाये;
नमन उसको हों सदा सबके समर्पित;
वह रहेगी पुष्प जीवन का खिलाये।

उच्चतम शक्ति

उच्चतम है शक्ति नारी त्याग-बल से;
खेलती रहती सदा झंझा-अनल से;
किन्तु ज्वाला से बचाती वह सभी को;
अग्नि से है त्राण देती रक्तजल से।

सर्वदा वात्सल्य-तप करती कठिन है;
अंक में निज पालती शिशु रात-दिन है;
वह भला क्या जानती विश्राम-निद्रा?
क्या भला परिवेश वह रखती मलिन है?

सहन करती कष्ट है नारी विहँसकर;
झेलती है क्रूरतम आघात-प्रस्तर;
गोलियाँ भी अधिकतम उसने सही हैं;
क्या भला बलिदान कोई है महत्तर?

इस प्रबलतम शक्ति से नारी अभय है;
झेलती आई युगों से वह प्रलय है,
शक्ति के हैं स्रोत विनय-सहिष्णुता ही,
स्रोत जिसके पास यह, उसकी विजय है।

दे रही संसार को सद्भावना है;
क्या नहीं माँ उच्चतम उत्प्रेरणा है?
कब हुआ मातृत्व उसका है विसर्जित?
मनुज को देती सदा शुभ कल्पना है।

वह तिमिर में ज्योति मंगल की जगाती;
दुःखमय वनवास में आनन्द लाती;
है जहाँ रहती शिवा, रहता शिवम् है;
मुरलिका-स्वर को मधुरतर वह बनाती।

मधुरता में शक्ति, वह दुर्बल नहीं है;
क्या भला नारी प्रबल सम्बल नहीं है?
शक्ति-विद्युत् के लिए अनिवार्य है वह;
अभयतामय क्या सदा आँचल नहीं है?

कल्पना है सृष्टि की नारी चलाती;
सर्वदैव विकासमय दीपक जलाती;
वह सदा बनती सुछवि-सम्पन्नता है;
सर्वदा वह शक्ति की वीणा बजाती।

नमन

नमन तुमको हे कलाविज्ञानमयि ! शत-शत नमन ।
शस्त्रमयि हे ! शास्त्रमयि ! हैं सन्तुलित कुल आचरण ।

तुम परम वरदानदात्री,
शाप-बल भी है चरम;
सृष्टि-क्रम के साथ ही
तुम हो चलाती नाश-क्रम ।

दण्ड भी देतीं चरम, सन्ताप का करतीं शमन ।

भारती शंकर-विजयिनी,
तुम परम मेधामयी;
चिर परम प्रतिभामयी हो;
हिममयी, ज्वालामयी ।

पान करतीं गरल-ज्वाला, विश्व की हरतीं तपन ।

वन्दना तुमको समर्पित;
लो अखिल सद्‌भावना;
तुम सदा देती रहो—
मनुजत्व को शुभकामना ।

सर्वदा मांगल्यमय पावन तुम्हारा आगमन ।

तुम सदा करुणामयी हो,
चिर क्षमा की दायिनी,
सर्वदा मातृत्वपूर्णा,
माँ रहो या भामिनी ।

सुयश-रेणु विकीर्ण करता है तुम्हारा चिर पवन ।

काल की विकरालता में
अभय रहतीं सर्वथा,
सर्वमंगलपूर्ण करतीं
मनुज की जीवन-कथा ।

पूर्णतः आनन्ददायी हैं तुम्हारे मधुवचन ।

कर्म की भी शक्ति हो तुम,
प्रेम की वाणी तुम्हीं,
सर्वदा सहयोगिनी तुम,
हृदय की रानी तुम्हीं ।

विश्व को देती सदा हो ज्ञान-बल का सन्तुलन ।

मातृदुग्ध

यों तो उत्तम दुग्ध सभी हैं,
मातृदुग्ध सर्वोत्तम होता;
शैशव यही दुग्ध पीने को
पृथ्वी पर आते ही रोता।

दुग्ध शक्तिमय होता है, पर
इसमें सब शक्तियाँ निहित हैं,
रोगनिरोधक रोगोन्मूलक
सदा क्षीर यह, सर्वविदित है।

नहीं रूप-गुण तक ही सीमित,
इसमें माता की ममता है,
कोई पय क्या कर पाता इस
अमृतोपम निधि की समता है ?

इसमें माँ की शक्ति सन्निहित,
इसमें है वात्सल्य अपरिमित,
नहीं लेखनी कर पाती है
इसकी महिमाओं को वर्णित।

केवल दैहिक शक्ति न देता;
प्राणशक्ति भी यह देता है;
सबल मनोबल और आत्मबल
देता, मूल्य न कुछ लेता है।

माँ को पोषाहार प्रचुर दें;
तो बढ़ती इसकी गुणवत्ता;
उज्ज्वलता जीवन में भरती
इसी क्षीर की है उज्ज्वलता।

क्यों हो भला उपेक्षा इसकी ?
और उपेक्षा क्यों माता की ?
इसकी शक्ति बढ़ाकर ही तो
बढ़ती शक्ति राष्ट्रमाता की।

श्वेत क्रान्ति यह सर्वोत्तम है;
इसको सफल बनाना वांछित;
राष्ट्र निखिल हो सदा निरामय,
क्यों हो आधि-व्याधि से पीड़ित ?

मातृभूमि-नमन

मातृशक्ति के संग सर्वदा
मातृभूमि को करें नमन हम;
जन्मदायिनी भूमि निखिल
माताओं की ! ले भक्ति-सुमन-श्रम ।

इस भारत में जन्म ग्रहण कर
सीता जग-जननी कहलाई;
चकित और श्रद्धानत है भव,
ऐसी ज्योति कहाँ से आई ?

हुई देवकी और यशोदा,
राधा की भी क्या समता है ?
सीतामही कि व्रजमण्डल हो,
किस थल में इतनी क्षमता है ?

त्रिशला अथवा मायादेवी,
या यशोधरा राहुल-माता,
क्या न बुद्ध की ज्ञानदायिनी
हुई गया की देन सुजाता ?

और अम्बपाली भी गरिमा-
मयी नहीं क्या वैशाली की ?
विश्वविदित महनार हो गया;
क्या महिमा कम इस लाली की ?

मीरा, जीजा, दुर्गाबाई,
झाँसी की वह लक्ष्मीबाई;
सभी धन्य हैं, जिनसे भारत—
की कुल भूमि धन्य कहलाई ।

भारत की यह भूमि पुनीता;
थी बिहार में हुई भारती;
जो शंकर की हुई विजयिनी;
युग-युग से हो रही आरती ।

अमर जननियों की जननी इस
भारत की मिट्टी का वन्दन;
माताओं के कारण ही यह
भूमि सर्वदा लगती चन्दन ।

आगे बढ़ते ही जाना है

नारी समाज-संचालन का
गुरु भार लिये जग में आई;
चिर बाधा, विघ्न, उपेक्षा से
उसको न कभी घबड़ाना है।

कर्त्तव्य-पन्थ-दायित्व लिये,
करते सुकर्म ही रहना है;
निर्माण-मार्ग पर क्या रुकना ?
आगे बढ़ते ही जाना है।

वह अग्रदूतिका रही सदा,
तो पीछे क्यों रह जायेगी ?
चिर मार्गदर्शिका सन्तति की;
शुचि पन्थ सदैव बनाना है।

प्रेरणा दे रही वह आत्मा,
जो कवि की श्रेष्ठांगिनी बनी;
वह तो दिवंगता हुई, किन्तु
कवि को कर्त्तव्य निभाना है।

विपदाएँ आती हैं, आयें;
उनका तो है कर्त्तव्य यही;
पर मनुजों को तो अविश्रान्त—
शिव कर्मालोक जगाना है।

जो था अतीत, वह तो व्यतीत,
जो वर्त्तमान, इसको रचना;
है यह भविष्य का निर्माता,
चिर हमें भविष्य बनाना है।

नारी होती ही है प्रबुद्ध;
यह केवल ध्यानाकर्षण है;
सबको जो सिखला सकती है,
क्या उसको भला सिखाना है ?

नारी को शिक्षा-स्वास्थ्य मिले,
कर्त्तव्य हेतु यह आवश्यक;
वह तो शाश्वत कर्त्तव्यमयी,
अधिकार कर्म से पाना है।

कोई होती है रंगवती;
कोई है रूपवती होती;
गुणवती किन्तु सर्वोपरि है;
यह सत्य ध्यान में लाना है।

गुण कर्मों से ही व्यक्त सदा;
अव्यक्त उन्हें क्या रखना है?
कर्त्तव्यों की उत्तुंग ध्वजा—
को ऊपर सदा उठाना है।

निर्माणमयी नारी सदैव;
कल्पनामयी, जयगानमयी;
शिवकर्म-ज्योति से उसको चिर
वसुधा को मार्ग दिखाना है।

वह अग्रदूतिका रही सदा—
रूढ़ियों-ग्रन्थियों से ऊपर;
औदात्यगीत-गायिका पूर्ण;
यह गीत उसे चिर गाना है।

नारियाँ उच्चतर हैं नर से;
भारत-नारी का क्या कहना?
सन्देश विश्व को देती थी;
फिर वह सन्देश सुनाना है!

भारत-मानव बढ़ते जायें—
आगे, नारी को आदर दें;
समता दें, न्याय, समर्पण दें;
फिर कभी कहाँ पछताना है?

रावणता-दुर्योधनता-दुःशासनता

पौराणिक युग त्रेता-द्वापर;
या कि ऐतिहासिक नवयुग हो;
नारी पर अन्याय-दमन के—
चले सदा दुश्चक्र भयंकर।

वर्ग जन्मदायी-पालक जो,—
उसके प्रति ऐसी कृतघ्नता;
अखिल सभ्यता-संस्कृति लेकर—
बर्बर ही रह गया निरन्तर।

अत्याचारी-नाश - कथाएँ
अंकित ग्रन्थों के पृष्ठों पर;
अन्त व्यक्तियों का होता है;
जीवित रहती अमानुषिकता।

रावण का होता विनाश है,
किन्तु हरी जातीं सीताएँ;
क्या न कभी होगी विनष्ट चिर
महापराधमयी रावणता ?

द्रौपदियों का चीरहरण भी—
तो क्रमशः चलता रहता है;
चाहे तुमुल महाभारत हो;
हत हों दुर्योधन-दुःशासन।

अन्त करे दुर्योधनता का,—
वध कर दे दुःशासनता का;
यह तो संभव तभी कि जब हों—
व्रती भीम-अर्जुनवत् जन-जन।

पुत्रवधू

पुत्रीवत् ही पुत्रवधू को भी तो हम अपनायें;
जीवन-पथ वह देख न पाये तो हम उसे दिखायें।

माता - पिता छोड़कर प्यारे,
वह पति के घर आती;
सास-ससुर हैं मातृपितृवत्,
जननी उसे सिखाती।

यह भी क्या है ? भूल करे तो क्षमा नहीं कर पायें ?

भूल-चूक तो सबसे होती;
जीवन बहुत कठिन है;
कभी रात यदि रहती है तो
फिर आ सकता दिन है।

क्यों न प्यार से पुत्रवधू को भी हम सब समझायें ?

पीहर ने त्रुटि की तो इसमें
उसका दोष कहाँ है ?
वह तो छोड़ उसे आई, अब
क्या अधिकार वहाँ है ?

कलह करे क्या लेने को वह ? लूट-झपटकर लाये ?

उसे श्वान की पुच्छ न समझ;
सीधी हो सकती है;
प्यार मिले तो बीज प्यार के
वह भी बो सकती है।

सब कुछ तो उसका ही होगा, उसको क्यों न बतायें !

करना ही जीवन है, वह भी
तो कुछ कर सकती है;
सागर भले न हो, गागर भी
तो वह भर सकती है।

खाली मानस राक्षसवत् है; उसको कर्म सिखायें।

नहीं सीखती है यदि वह तो
उसको ही दुख होगा;
सदा नम्रता - सेवा से ही
सुलभ सदा सुख होगा।

क्या मनुष्यता है कि वधू की हत्या करें ? जलायें ?

पुत्री

हम दो और हमारे दो हों, पर पुत्री भी एक रहे।

समता हो तो सर्वोपरि है,
पर इसपर अधिकार कहाँ ?
सुख-सेवा की प्राप्ति वहाँ है;
बेटी भी हो प्राप्त जहाँ।

भला पुत्र से ही क्या संभव ? चाहे जितना नेक रहे।

गृह की शोभा सदा आत्मजा;
वह सेवा की प्रतिमा है;
उसमें कला निहित रहती है;
सचमुच कितनी गरिमा है !

सदा स्नेह-समता पुत्री के प्रति हो, सदा विवेक रहे।

माता की सेवा के प्रति वह
रखती कितनी तत्परता !
उसका प्रिय वात्सल्य मनुज को
देता जीवन - उर्वरता।

कौन देखता है, पुत्री ने सचमुच कितने कष्ट सहे ?

दीपशिखावत् ज्योति जगाती
है वह दो परिवारों में,
शीतलता भरती रहती है
जीवन के अंगारों में।

सदा साधनारत रहती है, भले अश्रु की धार बहे।

कष्ट और कटुता सहती है;
देती रहती कोमलता;
निखिल कालिमा धोकर, देती
वह उज्ज्वलता-निर्मलता।

त्याग- तपस्या-सहिष्णुता में क्यों न उसे अप्रतिम कहें ?

पालना, शिक्षण-प्रशिक्षण

जन्म से ही जिसकी नियति उपेक्षा है;
कैसे कहा जाय कि पालने में उपेक्षा नहीं ?
उपेक्षा का न होना ही अस्वाभाविक हो स्यात्;
क्योंकि परिवेश ही है उपेक्षा का आद्यन्त ।

बेचारी कन्या झेलती है भारी कुपोषण;
कितना कुप्रभावित होता है उसका स्वास्थ्य ?
न जाने कैसे होती है उसकी स्वास्थ्य-रक्षा ?
क्या हो पाती है रक्षा की पूर्ण व्यवस्था ?

प्रतिकूल परिस्थितियों में पलती है कन्या ?
उसे करना पड़ता है कम खाने का अभ्यास;
शिक्षा-व्यवस्था में भी समानता कहाँ ?
पग-पग पर असुविधाएँ और उलझनें ।

समस्याओं और जटिलताओं की भरमार,
विद्यालय जाने-आने की भीषण समस्या;
थोड़ी बड़ी हुई नहीं कि निकास कठिन;
चाहिए परिवहन और सुरक्षा की व्यवस्था ।

कन्या को गृहलक्ष्मी बनना है अन्ततोगत्वा;
वही तो देगी आवास को श्री-सुषमा;
किन्तु विद्यालय तो ज़ाना ही है उसे भी;
कहीं संभव है गृह में ही पूर्ण शिक्षा ?

उसे प्राप्त करना है उन्नत शिल्प-ज्ञान;
संगीत-नृत्यविद्या भी उसे पानी है;
संस्कृति की प्रतिमा तो उसे बनना ही है;
और पाकशाला में भी उसे कौशल दिखाना है ।

डॉक्टर या अभियन्ता भी उसे बनना है;
कला, विज्ञान और वाणिज्य में भी हो आगे;
गृहलक्ष्मी बनने का करना है अभ्यास;
और विधि का क्षेत्र भी वर्जित नहीं ।

प्रौद्योगिकी से उद्यानिकी तक में हो निष्णात;
उसे बनना है सर्वगुण-सम्पन्ना अवश्य;
परन्तु उसे रहना है अनेक सीमाओं में;
लज्जा-संकोच-बन्धन से भी वह मुक्त कहाँ ?

अपनी रुचि के साथ रखना है उसे
दूसरों की भी रुचि और पसन्द का ध्यान;
उसे अन्ततोगत्वा होना होगा परिणीता,
और बसाना तथा सज़ाना है एक नया परिवार।

होना है उसे सभी कार्यों में सर्मपिता;
समर्पण की ही तो देन है दक्षता;
अनवरत कर्म ही है उसका जीवन;
विश्राम हेतु उसे अवकाश ही कहाँ ?

किन्तु धन्य है नारी - जीवन का रूप;
दायित्वों और कर्त्तव्यों का है पुंज;
नहीं करना है उसे एक पल भी नष्ट;
निरन्तर रहना है उसे यंत्रवत् व्यस्त।

कन्या को बनना ही है सन्नारी;
और सन्नारी को बनना है मंत्रदात्री;
श्वसा-श्वसुर का भी रखना है ध्यान;
देना है सर्वत्र संस्कारों का प्रकाश।

व्यक्तित्व

नारी नहीं तो कहाँ है सृष्टि का अस्तित्व ?
कहाँ है कल्पना और कहाँ है कर्त्तृत्व ?
उसके अभाव में कहाँ है सर्जना का रूप ?
उसके व्यक्तित्व के बिना कहाँ है व्यक्तित्व ?

केवल मृदु ही नहीं है, प्रत्युत वज्रांगना भी है;
वह सर्वसहिष्णु ही नहीं, बल्कि वीरांगना भी है;
उसके समर्पण से खिलते हैं जीवन के सभी पुष्प;
उसकी विनम्रता में स्वाभिमान की भावना भी है ?

विशिष्टताओं के बावजूद वह चाहती है समता;
क्या सर्वथा असाधारण नहीं है उसकी ममता ?
यदि तुलना नहीं तो क्या नहीं है अतुलनीय ?
उसकी सेवा का पुरस्कार क्या है परवशता ?

यह भ्रान्ति है कि उसकी सहिष्णुता है सीमाहीन;
उसकी शक्ति है अजेय तो कहाँ है दीनातिदीन ?
शान्ति के बावजूद क्या नहीं है उसमें क्रान्ति ?
क्या नहीं निर्मित करेगी वह युग नवीन ?

क्या वह शरच्चन्द्रिका ही है शीतल ?
क्या वह अश्रु-मेघमाला ही है कज्जल ?
क्या वह रौद्ररूप - धारिणी उष्मा भी नहीं ?
करुणामयी होकर भी क्या नहीं है प्रोज्ज्वल ?

क्या वह प्रवेगमयी नहीं, केवल मन्दगति ?
क्या नहीं है साक्षात् कला एवं संस्कृति ?
करुणामयी होकर भी क्या नहीं है चेतनामयी ?
क्या नहीं है प्रज्ञामयी और साक्षात् सुमति ?

कान्तासम्मित के समान कहाँ है संभव उपदेश ?
माता के वात्सल्य के सदृश कहाँ है स्नेह का लेश ?
पत्नी के समान कहाँ हैं प्राणामृत की धारा ?
उसके सिवा कौन ले सकता है समस्त क्लेश ?

स्वच्छता और सुगन्ध का कहाँ है ऐसा उदाहरण ?
शक्ति ओर भक्ति का कहाँ ऐसा योग मणिकांचन ?
शान्ति, प्रीति, कान्ति का कहाँ है त्रिवेणी सगम ?
उसको ज्योति से क्या ज्योतित नहीं है मानव-मन ?

नई शक्ति, नवल ज्योति

नई शक्ति जागे भारत में,
नवल ज्योति फिर जागे;
नरनारी-सहयोग-प्राण ले,
बढ़े निरन्तर आगे।

बढ़ती जाये चिर अजेयता,
बढ़े सदा कर्मठता;
रहे न परवशता नारी की;
कभी न रहे विवशता।

प्रतिभा-मेधा-बलविकास हो
नारी का शत प्रतिशत;
नर-नारी की पूर्ण प्रगति से
बढ़े निरंतर भारत।

महादेश भारत है, इसमें
महाशक्ति है भौतिक;
नर-नारी में है समान ही
बल नैतिक-आध्यात्मिक।

साहित्यिक-सांस्कृतिक शक्ति है;
पूर्ण प्रभा वैज्ञानिक;
राजनीति शासन क्षमता है;
क्षमता है औद्योगिक।

अर्द्ध शक्ति भारत की फिर क्यों
रहे अल्प ही विकसित ?
इससे तो सर्वदा रहेगी
शक्ति राष्ट्र की खण्डित।

अर्द्ध शक्ति से कहीं देश का
पूर्ण विकास हुआ है ?
कतिपय शतियों में ही इससे
सत्यानाश हुआ है।

भारत में तो पुरा काल में
नहीं भेद था रक्षित,
पूर्ण समत्व निरंतर था
इस महादेश में स्थापित।

क्यों विकास रह जाय अल्प ही ?
अर्द्ध रूप क्यों निर्बल ?
नर-नारी की पूर्ण शक्ति ही
तो विकास का सम्बल ?

निहित सभी में उत्स प्रगति के,
निहित सभी में क्षमता,
समता के इस पुण्यदेश में
क्यों हो कहीं विषमता ?

बुद्धि-विवेक न कम नारी में,
निहित कहाँ कम चिन्तन ?
संयम और सन्तुलन में वह
रत रखती है जीवन।

रहे व्यावहारिकता अथवा
उदारता — भावुकता,
देश-भक्ति अथवा सेवा हो,
उसमें क्या निर्बलता ?

मूर्त्ति सर्वदा सहृदयता की,
या रखती निर्दयता ?
जीव मात्र के प्रति रखती है
कितनी करुणा-ममता

मानवता — संवृद्धिकारिणी
सर्वोपरि नारी है;
दानवता का दुर्ग जलाती
उसकी चिनगारी है।

बढ़ती है तो परिणामों की
चिन्ता क्या करती है ?
वह तो निर्भयता से नर का
भी अन्तर भरती है।

उसका भी क्यों नहीं राष्ट्र यह
पूर्ण करे मूल्यांकन ?
वह भी तो हिमवान तुल्य है,
उसे न समझें रजकण।

चिर वाणीवत्, नहीं माँगती
अलंकार की भिक्षा;
इच्छित है समता पर आधारित
अधिकाधिक शिक्षा।

शोभा को ही वस्तु नहीं वह;
क्या सज्जा का साधन ?
सदा रूप के साथ कर्म में
भी उसके आकर्षण।

पाती है आनन्द सर्वदा
कर्म - निरत रहने में;
कहाँ ऊबती है अधिकाधिक
दुःख-व्यथा सहने में ?

अमृतमयी है, नहीं मृत्यु से
तिलभर भी घबड़ाती;
रोती आई है, पर जग से
हँसती-हँसती जाती।

पूर्ण कर्म देने की इच्छा
है सदैव रखती वह;
सह लेती है वह अभाव का
कठिन भार भी दुर्वह।

सदा सादगी में जीवन की
ऊँची शक्ति निहित है;
नारी की वीरत्व-शक्ति भी
वसुधा को सुविदित है।

अन्धकार हो भले गहनतम,
उसे भगा सकती है;
झंझावातों के शिखरों पर
दीप जला सकती है।

लक्ष्मी ही तो अमानिशा में
लाती है दीपाली;
भर देती वन में, दिगन्त में
भी दिन की उजियाली।

शरच्चन्द्रिका-ज्योति जगाती;
मधुऋतु-सुषमा लाती;
अमृतज्योति-मकरन्द-छन्द बन;
वीणा मधुर बजाती।

वह आयुध की शक्ति बढ़ाती,
उसे उठा जब लेती;
युद्ध-विजयिनी बन, भारत को
विजय-माल्य है देती।

पूर्ण स्नेह-समता दे उसको,
सारे सुख पाता है,
उसकी करे उपेक्षा तो क्या
नर आगे जाता है?

वह अखण्ड विश्वास चाहती;
इसके योग्य सदा है;
फिर क्यों उसपर अविश्वास का
भारी भार लदा है?

अगणित चिन्ताओं का दुर्वह
व्यर्थ बोझ नर ढोता;
शंकाओं के क्षुब्ध सिन्धु में
झेल रहा है गोता।

दे सकती है सदा राष्ट्र को
नारी केसर-क्यारी;
कर सकती कुसुमित-सुरभित
भारत को धरती सारी।

उन्नत रख सकती भारत की
संस्कृतिमयी पताका;
दे सकती सभ्यता-व्योम को
भारत - गरिमा - राका।

अतः भला क्यों झिझक-हिचक हो
समता को सुविधा में?
पड़ा रहेगा क्यों भारत
इस जड़ घातक दुविधा में?

विभावरी का अन्त करे यह,
लाये नव अरुणोदय;
सम नर-नारी-प्रगति राष्ट्र का
बन सकती भाग्योदय।

यही मार्ग है, नहीं अन्य है
भारत की उन्नति का;
शालीनता और महिमा का,
शीलपूर्ण गति-मति का।

चिर महीयसी, महनीया,
गरिमा-प्रतिमा है नारी;
शक्ति ओज-उत्साहमयी ने
हिम्मत कभी न हारी।

जीवन-अम्बुधि की तरंग है;
चिर उमंग है नर की;
दे सकती उत्साह-रश्मियाँ
उत्सवमय मधु स्वर की।

उसकी पूर्ण समुन्नति से ही
राष्ट्र अलंकृत होगा;
गूँजेगा संगीत प्राण का,
नृत्य सुझंकृत होगा।

अमृतपुत्र भारत क्यों मूर्च्छित ?
क्यों उत्पीड़ित होगा ?
नारी की अधिकाधिक उन्नति-
से नवजीवित होगा।

यह समता की दृष्टि रहे तो
मरण कहाँ भारत का ?
क्या न राष्ट्र बन सकता पन्थी
समता के शुचि व्रत का ?

समोत्थान-पथ-यात्री चिर,
ले रहा देश अँगड़ाई;
कभी जीर्ण क्या हो सकती है
इस पथ पर तरुणाई ?

ढह जायेंगे ढूह तिमिर के,
जड़ता-जर्जरता के;
सिकता से अंकुर फूटेंगे
शाश्वत उर्वरता के।

शूल बनेंगे सुमन पन्थ पर,
गिरि देंगे सुविधाएँ;
वन देंगे फल-वृष्टि-विभव,
हर लेंगे कुल बाधाएँ।

आमय होंगे नष्ट, निरामय
होंगे कुल भारत-जन;
एक सूत्र में गुम्फित होंगे
हृदय — प्राण — अन्तर्मन।

नव समृद्धि का पथिक बनेगा
राष्ट्र सुगतिमय, निर्भय;
स्वर्ग - कल्पना से बढ़कर
भारत होगा ज्योतिर्मय।

जागृति-पथ पर

जागे शक्तिमयी भारत की;
सतत चेतना जागे;
अमृत-मन्त्र नारी-जीवन का
कुल वसुन्धरा माँगे

शक्तिमयी में अमित शक्ति है;
क्या करना भिक्षाटन ?
स्वयं छिन्न कर सकती है वह
सारे बाधा-बन्धन ।

माँगे हैं अधिकार न जाते;
स्वयं लिये जाते हैं;
ऐसे ही व्रतियों का गौरव
युग-युग जन गाते हैं ।

दात्री है नारी जीवन की;
क्यों माँगे वह जीवन ?
दुर्बलता का, अक्षमता का
उसे कहाँ अवगुण्ठन ?

अवगुण्ठन से निकल चुकी;
आगे बढ़ती जायेगी,
अखिल योग्यताएँ अर्जित कर,
अमृतगीत गायेगी ।

नवल ज्योति, नवशक्ति भरेगी
भारत के जन-जन में,
मूर्त्त करेगी निखिल कल्पनाएँ
स्वदेश-कण-कण में ।

नई भूमिकाओं से वह क्यों
रहे कदापि अनवगत ?
करती जायेगी उन्नति का
सतत सुकेतु समुन्नत ।

निज समता-एकता-शक्ति से
दृढ़ संगठन करेगी,
दृष्टिकोण रचनात्मक लेकर
स्वत्व प्राप्त कर लेगी ।

नहीं लोभ की प्रतिमा है वह,
क्यों चाहेगी कंचन ?
उसे चाहिए केवल गुण—
सक्रियता का ही साधन ।

स्वाभिमान-कल्याण चाहिए,
सद्व्यवहार अपेक्षित;
मनुजोचित ही स्वत्व रहे,
कुछ नहीं चाहिए अनुचित ।

यह तो है ध्रुव सत्य कि जो
उसके अधिकार हरेगा—
नहीं राष्ट्र वह जीवित रह
सकता, बेमौत मरेगा ।

कुछ विशेष चाहती नहीं वह,
मात्र चाहती समता;
मातृदुग्ध देगी समाज को,
देगी माँ की ममता ।

राष्ट्र पुष्ट होगा क्या उसको
देकर भला कुपोषण ?
पोषण अल्प मिले तो देगी
वह कैसे बल-यौवन ?

पोषण से जो शक्ति मिलेगी,
उसको ही तो देगी;
क्या समाज-परिवार-देश की
प्राण-शक्ति ले लेगी ?

संरक्षिका रहेगी शाश्वत,
वह पालिका रहेगी;
सुख समस्त देगी स्वेच्छा से,
वह कुल कष्ट सहेगी ।

समतामय आदर वांछित है;
सम उन्नति है वांछित;
पूर्ण प्रगति-मेधा-विकास के
अवसर ही हैं समुचित ।

मिला चरण से चरण चलेगी;
वह सहयोगमयी है;
तोषमयी है, त्यागमयी है;
क्या वह भोगमयी है?

हों उसके भी हेतु सदा ही
नर समान कुल अवसर;
पा उसका सहयोग पूर्ण तब
होगा राष्ट्र स्वनिर्भर।

प्रतिभा-मेधा की विहंगिनी
देगी छवि लोकोत्तर;
सुरधनु की सुषमा सतरंगी
उतरेगी भूतल पर।

परिकल्पना खगेन्द्र-उड्डयन
से बढ़कर गतिवाली
सम्भव होगी, भारत-अवनति
की मृत होगी व्याली।

रचनानुक्रम